पंजीयन संख्या : 68939/98

# ज्ञान तत्व

**सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक**

MAY 2026

अंक - 05

निजीकरण, राष्ट्रीयकरण, समाजीकरण 3

प्रश्नोत्तर 5

493

प्रकाशन की तिथि - 31-05-2026 पोस्ट की तिथि - 15-06-2026

# सिंहावलोकन

06 **नई समाज व्यवस्था**

12 **क्या दक्षिणपंथ वास्तव में एक स्वतंत्र विचारधारा है? सहसंपादक - ज्ञानेंद्र आर्य**

13 **जूम चर्चा कार्यक्रम**

15 **जीवन पथ**

17 **संस्थागत समाचार**

18 **मां संस्थान की संविधान सभा पहल के प्रेरणास्रोत को श्रद्धांजलि**

**पत्र व्यवहार का पता**

**बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021**

website : margdarshak.info

**प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल**

**9617079344**

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

**प्रधान संपादक**
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

**संपादक मण्डल**
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

**सहयोगी संपादक**
ज्ञानेन्द्र आर्य

**सदस्यता नियमन**
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

**सज्जा**
लाल बाबू रवि

**वितरण एवं मुद्रण सहयोग**
रबीन्द्र विश्वास

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

# निजीकरण, राष्ट्रीयकरण, समाजीकरण

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। दोनों मिलकर ही एक व्यवस्था बनाते हैं। व्यक्ति की उच्छृंखलता पर समाज नियंत्रण नहीं कर सकता क्योंकि समाज एक अमूर्त इकाई है, इसलिए राज्य की आवश्यकता होती है। समाज और राज्य एक दूसरे के लिए सहयोग और नियंत्रण का कार्य करते रहते हैं। व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा समाज का कर्तव्य होता है और राज्य का दायित्व। व्यक्ति के मौलिक अधिकारों में सम्पत्ति का भी समावेश होता है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति की सहमति के बिना राज्य उसकी सम्पत्ति में भी कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पश्चिम की लोकतांत्रिक और पूंजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है तो साम्यवादी व्यवस्था में राज्य। भारत की प्राचीन व्यवस्था में समाज और व्यक्ति के अधिकारों का संतुलन बिल्कुल ठीक था, जो भारत की गुलामी के काल में बिगड़ गया। मुस्लिम शासन काल में व्यक्ति कमजोर हुआ तो अंग्रेजों के शासनकाल में समाज कमजोर हुआ। स्वतंत्रता के बाद तो यह एक तरह का खिचड़ी सरीखा बन गया जिसमें पता ही नहीं है कि व्यक्ति, समाज और राज्य की क्या स्थिति है। भारतीय व्यवस्था में साम्यवाद का कितना प्रभाव है और पूंजीवाद का कितना, यह स्पष्ट नहीं है। सन् 91 के पहले तो भारत की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर साम्यवाद का विशेष प्रभाव था, किन्तु उसके बाद धीरे-धीरे पूंजीवाद की घुसपैठ हुई और वर्तमान में दोनों की खिचड़ी बनी हुई है। जिन भी देशों में राष्ट्र शब्द का उपयोग होता है उसका वास्तविक आशय सरकार से ही होता है, चाहे राष्ट्र शब्द का उपयोग संघ परिवार के लोग करें या साम्यवादी, नीयत दोनों की एक ही होती है। इसका अर्थ हुआ कि सरकारीकरण को ही मीठी चाशनी में लपेट कर राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है, जबकि राष्ट्रीयकरण जैसा कुछ नहीं होता है। यदि किसी देश में तानाशाही होती है तो राष्ट्रीयकरण से देश या राज्य तरक्की करता है, और समाज गुलाम हो जाता है, किन्तु यदि किसी देश में लोकतंत्र है तो राष्ट्रीयकरण भ्रष्टाचार का केन्द्र बन जाता है। भारत ऐसे ही भ्रष्टाचार का केन्द्र बना है जहाँ की आर्थिक व्यवस्था में पूरी तरह सरकार का नियंत्रण है। यदि राष्ट्रीयकरण किसी मामले में नहीं भी है तो भी सरकार का नियंत्रण इतना अधिक है कि भ्रष्टाचार होना ही है। किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए सम्पूर्ण निजीकरण ही एकमात्र समाधान है। निजीकरण से गरीब और अमीर के बीच की दूरी बढ़ती है क्योंकि स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में गरीब और श्रमजीवी पिछड़ेगा ही। किन्तु सरकारीकरण इस आर्थिक असमानता का समाधान न होकर विस्तार देने वाला होता है क्योंकि प्रतिस्पर्धा कार्यक्षमता को बढ़ाती है तथा उत्पादन में भी वृद्धि करती है। राष्ट्रीयकरण से नुकसान ही नुकसान होता है। मेरा अनुमान है कि कोई भी सरकार किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता देना नहीं चाहती। वर्तमान सरकार बारह वर्षों से पूंजीवाद की तरफ बढ़ रही है, जिसका अर्थ हुआ कि धीरे-धीरे निजीकरण आ रहा है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि राजनेताओं की नीयत साफ है। भ्रष्टाचार और असफलताओं को देखते हुए ये लोग निजीकरण स्वीकार कर रहे हैं, किन्तु यह भय बना हुआ है कि थोड़ी सी समस्या सुलझते ही फिर से इंस्पेक्टर राज और राष्ट्रीयकरण का नारा बुलंद कर सकते हैं। वैसे भी सैद्धांतिक रूप से संघ परिवार राष्ट्रीयकरण अर्थात सरकारीकरण का पक्षधर रहा है, यद्यपि वर्तमान में वह निजीकरण का समर्थन कर रहा है। भारत की वर्तमान समस्याओं का तात्कालिक समाधान तो अधिकतम निजीकरण ही है। सरकार को चाहिए कि वह अपने सुरक्षा और न्याय की आवश्यकताओं के अनुरूप टैक्स लगाकर बाकी सभी आर्थिक मामलों में सम्पूर्ण स्वतंत्रता दे दे, पश्चिमी देशों से भी अधिक। यद्यपि सरकारीकरण का समाधान निजीकरण है, किन्तु निजीकरण आदर्श व्यवस्था नहीं है। आदर्श व्यवस्था तो समाजीकरण है, जिसका अर्थ होता है कि समाज की प्रत्येक इकाई को अपनी आर्थिक नीतियों के संबंध में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता हो। परिवार की पारिवारिक मामलों में, गाँव को गाँव संबंधी मामलों में और ऊपर की इकाइयों को अपने-अपने अन्य मामलों में। एक स्कूल चलाना है। गाँव के लोग बैठकर यह निर्णय कर सकते हैं कि स्कूल की पूरे गाँव के द्वारा व्यवस्था होनी चाहिए अथवा किसी व्यक्ति को करने दिया जाए। मैं नहीं समझता कि इस स्कूल के मामले में सरकार का हस्तक्षेप क्यों हो। कोई परिवार अपने बालक को नहीं पढ़ाना चाहता तो समाज उसे पढ़ाने के लिए बाध्य कर सकता है, किन्तु सरकार कौन होती है बीच में दखल देने वाली। सरकार ने तो ऐसा वातावरण बना दिया है कि जैसे सरकार ही समाज हो और उसे सारे अधिकार प्राप्त हों। मेरा स्पष्ट मत है कि सबसे अच्छी व्यवस्था और आदर्श स्थिति तो समाजीकरण है और सबसे बुरी स्थिति राष्ट्रीयकरण है। बीच में निजीकरण है। वर्तमान में राष्ट्रीयकरण से छुटकारा के लिए अल्पकाल में निजीकरण को भले ही प्रोत्साहित किया जाए, किन्तु दीर्घकालीन नीति तो समाजीकरण ही है। सभी समस्याओं का यही समाधान है।

## सरकारीकरण, निजीकरण या समाजीकरण

जब से यह सृष्टि बनी है तब से ही शासक वर्ग में समाज को गुलाम बनाकर रखने की इच्छा रही है। शासक अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग तरीकों का इस्तेमाल करते रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत में भी अलग-अलग समूहों ने अलग-अलग तरीकों से समाज को

गुलाम बनाए रखने के प्रयत्न जारी रखे। मुख्य रूप से तीन विचारधाराएँ सामने आईं। साम्यवादी विचारधारा, जो बन्दूक के जोर पर अपना शासन स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे, बाद में तो हार-थक कर उन्होंने नक्सलवाद के नाम पर प्रत्यक्ष बन्दूक उठा ली थी, जिसका निपटारा बन्दूक के माध्यम से ही किया जा चुका है। दूसरा प्रयत्न पूँजीवादियों का रहा, जिन्होंने लोकतंत्र के नाम पर इसी कार्य को जारी रखा। तीसरा प्रयत्न मुस्लिम संगठनों का और सावरकरवादियों का रहा, जिन्होंने धर्म और ताकत को जोड़कर वही प्रयत्न शुरू किया। तीनों प्रयत्न आपस में भले ही टकराते रहे हों, किन्तु इच्छा तीनों की एक समान थी कि समाज को अधिक से अधिक गुलाम बनाकर रखा जाए। सबसे पहले गांधी ने इस खतरे को पहचाना और ग्राम स्वराज्य के नाम से समाज सशक्तिकरण का नारा दिया। इसमें गांधी ने राज्य, धर्म और धन से भिन्न सामाजिक एकता की योजना प्रस्तुत की। किन्तु स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही गांधी चले गए और तीनों विचारधाराओं को छूट मिल गई कि वे समाज को गुलाम बनाकर रखने की खुली स्पर्धा कर सकें। गांधी के मरते ही गांधीवादियों ने सर्वोदय के नाम पर इस योजना में स्वयं को एक पक्ष के रूप में शामिल कर लिया। गांधीवादी संघ के एक पक्षीय विरोध के लिये इस सीमा तक उतावले हो गए कि उन्होंने न केवल गांधी के प्रयत्नों को छोड़ा बल्कि उससे आगे बढ़कर उन्होंने सरकारीकरण और हिंसा तक का समर्थन शुरू कर दिया। सर्वोदय का हर कार्यकर्ता निजीकरण का खुल्लेआम विरोध करता रहा, पूँजीवाद को गाली देता रहा, संघ और हिन्दुत्व के विरोध का नेतृत्व करता रहा, किन्तु सरकारीकरण, साम्यवाद, हिंसा या इस्लामिक हिंसा पर या तो वह चुप रहा या उसने मौन समर्थन किया। नक्सलवादी हिंसा के समर्थक विनायक सेन या संसद पर आक्रमण के आरोप से मुक्त हुए तथाकथित मुस्लिम आतंकवादी प्रोफेसर गिलानी तक के समर्थन में सर्वोदय के उच्च पदाधिकारी सामने खड़े दिखते रहे। बंगाल की साम्यवादी सरकार और नक्सलवादियों के बीच टकराव में भी सर्वोदय की सहानुभूति हिंसा समर्थक नक्सलवादियों के साथ ही रही। अमेरिका विरोध का तो जैसे इन्होंने ठेका ही उठा रखा था। सारा देश परमाणु बिजली खरीदने के लिये अमेरिका के समझौते के पक्ष में था, सर्वोदय के उच्च पदाधिकारी दिल्ली के जंतर-मंतर पर परमाणु बिजली समझौते के विरोध में नारे लगा रहे थे। गांधी के नाम पर गांधी को मानने वाले लोग इस तरह खादी पहनकर सरकारीकरण, नक्सलवादी हिंसा या इस्लामिक हिंसा का मौन समर्थन करेंगे, ऐसा तो कभी सोचा भी नहीं गया था। इसी का यह परिणाम हुआ कि इस तरह के नकली गांधीवादी लगभग समाप्त हो गए। जो 2-4 बचे हैं वे दिन-रात 24 घंटे संघ और नरेंद्र मोदी का विरोध करने के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य करते ही नहीं हैं। बंगाल और असम के चुनाव के बाद तो ऐसे गांधीवादी लगभग पागल हो गए हैं। अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। सरकारीकरण असफल नीति के रूप में घोषित हो चुका है। इस्लामिक आतंकवाद भी दम तोड़ रहा है। नक्सलवाद के समर्थक भी परेशान हो रहे हैं। भारत सरकार ने निजीकरण की दिशा में तेज गति से चलना शुरू कर दिया है। साम्यवादी अब विधवा विलाप तक सीमित हैं। सर्वोदय भी धीरे-धीरे लोकस्वराज्य की दिशा में बढ़ना शुरू कर चुका है। लगता है कि हिंसा और सरकारीकरण पूँजीवाद के राह पर तेजी से बदलकर चलना शुरू कर देगा। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या पूँजीवाद या निजीकरण सर्वश्रेष्ठ मार्ग है? मार्ग अहिंसक तो हो सकता है किन्तु पूँजीवाद के माध्यम से समाज को गुलाम बनाकर रखने की इच्छा में कोई कमी नहीं दिखती है। पूँजीपतियों और सत्ताधीशों के बीच उसी तरह का नापाक गठबन्धन शुरू हो गया है, जैसा स्वतंत्रता के पूर्व धूर्त सवर्णों और धूर्त अवर्णों के बीच आरक्षण के नाम पर नापाक गठबन्धन हुआ था, और जो आज भी जारी है। धन-सम्पत्ति पूँजीपतियों के पास तीव्र गति से इकट्ठी होती जाए और उसकी जूठन श्रमजीवियों और गरीबों तक राज्य पहुँचाता रहे, इसका हर प्रयत्न पूरे जोर-शोर से किया जाता है। अभी-अभी देश के बड़े-बड़े नेताओं ने गन्ना अध्यादेश लागू करने और निरस्त करने का नाटक किया। दिल्ली में बहुत बड़ा प्रदर्शन भी हुआ, सरकार झुक भी गई, किन्तु सबकी आवाज थी कि सरकार गन्ने का मूल्य बढ़ाए। एक भी आवाज ऐसी नहीं थी कि सरकार गन्ने पर सरकारी प्रतिबन्ध हटाए। स्वतंत्र भारत में भी कई जगह किसान अपने गन्ने का गुड़ नहीं बना सकता, ऐसे बेशर्म प्रयत्न आज भी भारत में जारी हैं, भले ही ये प्रयत्न सरकारीकरण से हटकर निजीकरण के ही क्यों न हो रहे हों। सरकारी एजेंसियाँ घूम-घूम कर गाँवों में साबुन से हाथ धोने का जितना प्रचार कर रही हैं, वह भी तो ऐसे ही अभियान का एक हिस्सा है। स्पष्ट है कि सरकारीकरण से हमारा पिंड छूट रहा है, किन्तु हमारी लड़ाई खत्म नहीं हुई है। क्योंकि समाज को गुलाम बनाकर रखने की राज्य-पूँजीपतियों की संयुक्त मुहिम से भी तो समाज को ही लड़ना होगा। निजीकरण सरकारीकरण की अपेक्षा एक वैसा ही अच्छा विकल्प है, जैसा तानाशाही की जगह लोकतंत्र। यह विकल्प तो हो सकता है किन्तु समाधान नहीं है। इसका समाधान समाज नियंत्रित अर्थव्यवस्था है, जैसा कि लोकतंत्र का समाधान लोक स्वराज्य के रूप में प्रस्तावित है। धन पर न राज्य का एकाधिकार होना चाहिए न पूँजीपतियों का, धन की व्यवस्था पर समाज का नियंत्रण ही आदर्श स्थिति हो सकती है। आजकल समाज को धोखा देने के लिये वोटर पेंशन नाम से एक मुहिम शुरू हुई है। कुछ राजनीतिक दल अपनी सत्ता मिलते ही एक हजार से लेकर पाँच हजार रु. महीने तक नागरिकों को मुफ्त देने की घोषणा कर रहे हैं, जिसका अप्रत्यक्ष उद्देश्य सत्ता में आकर

समाज को गुलाम बनाकर रखने की इच्छा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अच्छा होता यदि ये लोग गाँवों को अधिकतम आर्थिक स्वतंत्रता की वकालत करते और कहते कि यदि गाँवों को आर्थिक स्वतंत्रता मिल जायेगी, तो वर्तमान टैक्सों के रहते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति को कई हजार रुपये महीने स्वतः ही वोटर पेंशन के रूप में मिल जायेगा। ऐसा कहना अधिक उपयुक्त होगा। किन्तु ऐसा कहने से इन दलों को अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा कम करनी पड़ सकती है, जो इनका उद्देश्य नहीं है। सरकारीकरण को निजीकरण की दिशा में बढ़ने का हम स्वागत करते हैं, किन्तु निजीकरण को समाजीकरण में बदलने का हम प्रयत्न करेंगे। हम चाहेंगे कि सरकार में वित्त विभाग को संवैधानिक दर्जा दिया जाए। वित्त मंत्रालय वैसे ही स्वतंत्र हो जैसा न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका को स्वतंत्र अधिकार प्राप्त हैं। गाँवों को गाँव सम्बन्धी आर्थिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्रता हो। जिले अपने जिले में, प्रदेश अपने प्रदेश में और केन्द्र राष्ट्रीय आर्थिक मामलों में स्वतंत्रता से निर्णय ले। राज्य को सुरक्षा, न्याय जैसे जो भी विषय दिये जाएँ, उसके खर्च की व्यवस्था अर्थपालिका रूपी यह चौथा स्तम्भ करे, किन्तु किसी भी स्थिति में विधायिका को अर्थ सम्बन्धी मामलों में स्वतंत्रता देना खतरनाक कदम है। जिसके पास सेना है, पुलिस है, न्याय है, उसी के पास अर्थ भी हो जाए, यही तो समाज की गुलामी का लक्षण है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज लोकस्वराज्य के साथ-साथ अर्थस्वराज्य की दिशा में भी सोचना शुरू करे। मैं समझता हूँ कि यह आसान काम नहीं है। सरकारीकरण के आकर्षक नारे से पिण्ड छुड़ाने में साठ वर्ष लग गये। अब भी आंशिक ही पिण्ड छूटा है। कुछ माह पूर्व ही जरा सी आर्थिक मंदी का हल्ला होते ही समाजवाद के नाम पर पूँजीवाद विरोधी चूहे अखबारों में टूट पड़े। ऐसे लेख आने लगे जैसे सरकारीकरण ही इस समस्या का एक मात्र समाधान हो। मोदी जी ने धैर्य से काम लिया। शीघ्र ही सारी चिल्लाहट बन्द हो गई। किन्तु सरकारीकरण के विरुद्ध निजीकरण जितना आसान था, उतना आसान निजीकरण के स्थान पर समाजीकरण नहीं होगा। सभी पूँजीवादी इसका एक स्वर में विरोध करेंगे तथा राजनेता तो विरोध करेंगे ही। निजीकरण की लड़ाई में दुनिया के पूँजीवादी देश भी साथ थे और मनमोहन सिंह जी भी वैसी ही पढ़ाई पढ़कर निकले हुए थे, इसीलिये उन्होंने 35 वर्ष पहले बहुत हिम्मत करके पंडित नेहरू की राष्ट्रीयकरण की नीति को बिल्कुल उलट दिया था, किन्तु स्वतंत्र अर्थ व्यवस्था तो पूरे विश्व के लिये बिल्कुल नयी बात हो सकती है। इसलिये यह कार्य बहुत कठिन दिखता है। दूसरी ओर लोक स्वराज्य की सफलता के साथ जुड़ जाने से यह बात उतनी कठिन नहीं भी हो सकती है। हर परिवार को प्रशासनिक, संवैधानिक अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक मामलों में भी सीमित किन्तु स्वतंत्र अधिकार मिलें, यह मांग कठिन नहीं दिखती। एक बार इस मुद्दे पर आवाज तो उठनी शुरू हो। आगे तो बात अपने आप बढ़ जाएगी। प्रश्न यह नहीं है कि जल्दी सफलता मिले या देर से मिले, प्रश्न यह है कि इसके अतिरिक्त और समाधान क्या है? सरकारीकरण की तो बात ही नहीं हो सकती। पूँजीवाद को ही और संशोधित स्वरूप देना है। आशा है कि समाजीकरण पर एक सार्थक बहस छिड़ेगी और कोई समाधान मिल सकेगा। इस स्थिति में अगला प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान में स्थापित व्यवस्था के अनुसार राजनीति अपने निरंकुश स्वभाव को क्यों बदलना चाहेगी? वह अपने मूल स्वभाव के विरूद्ध क्यों आचरण करेगी? वस्तु स्थिति जीवन की मूल स्वतंत्रता को संरक्षण देने वाली व्यवस्था की स्थापना के लिए एक जन क्रांति का आह्वान करती है। लेकिन वह क्रांति किसी संस्था, संगठन या व्यक्तियों के अल्प समूह द्वारा आहूत न हो। वह किसी नेतृत्व की मोहताज न हो। बल्कि वह क्रांति जनसाधारण की वैचारिक चेतना का परिणाम हो। सम्पूर्ण जनमानस जिसका नायक हो। आदिकाल से आधुनिक काल तक समाज ने सत्ता के आक्रांताओं के विभिन्न रूप देखे हैं। दुनिया में राष्ट्र और राज्य की व्यवस्था के अन्तर्गत, कभी जीवन विदेशियों द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था का गुलाम रहा है और कभी स्वदेशी तंत्र का। हमें राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र में व्याप्त इसी दोष के उत्पन्न करने वाले सूत्र को समझना होगा। हमें यह तथ्य भी समझना होगा कि हम किसी अच्छी सरकार की स्थापना की कल्पना में कब तक गुलाम रह सकते हैं। और क्यों कोई अच्छी या बुरी सरकार अपने स्वभाव के विरूद्ध समाज को चिर स्वतंत्रता प्रदान करेगी।

# प्रश्नोत्तर

**श्री वैद्यराज आहूजा, भानुप्रतापपुर, छत्तीसगढ़**

**प्रश्न-** आपने लिखा है कि कृषि उपज पर भी कर लगता है। मैंने पता किया, बताया गया कि किसानों पर किसी तरह का कर नहीं है। जो भी कर लिया जाता है वह व्यापारियों से लिया जाता है। सच्चाई क्या है, इसे आप और स्पष्ट करें।

**उत्तर-** किसान अपनी जो भी फसल तैयार करता है वह मंडी में व्यापारी को बेचता है। व्यापारी से उक्त माल उपभोक्ता खरीदता है। गाँव का हर किसान कुछ वस्तुएँ बेचता है और कुछ खरीदता है। गाँव के नब्बे प्रतिशत लोग कुछ न कुछ पैदा करते हैं या खरीदते हैं। बहुत कम लोग ही हैं जो सिर्फ खरीदते ही हैं, किन्तु पैदा कुछ नहीं करते। उपभोक्ता जिस मूल्य पर व्यापारी से माल खरीदता है,

उसमें से सरकारी टैक्स काटकर ही तो व्यापारी उत्पादक से अनाज लेता है। कल्पना करिये कि उपभोक्ता मक्का दस रुपये किलो व्यापारी से खरीदता है और सरकार व्यापारी से पचास पैसा किलो टैक्स वसूल कर ले, तो व्यापारी किसानों को नौ रुपये पचास पैसा ही देगा। उसमें से ही वह अन्य अपना लाभ या खर्चे भी किसान से कम कर देगा। आप बताइये कि बिचौलिया कभी टैक्स देता है क्या? टैक्स तो उपभोक्ता और उत्पादक ही मिलकर दिया करते हैं। व्यापारी तो उक्त टैक्स में से कुछ न कुछ घपला भले ही कर दे, किन्तु किसी भी माल पर लगने वाला कोई कर कभी भी व्यापारी नहीं देता। व्यापारी टैक्स चोरी के लिये ही चिल्लाता रहता है, अन्यथा टैक्स से व्यापारी को कोई हानि कभी नहीं होती। कोई व्यापारी कुल मिलाकर जितना टैक्स इकट्ठा करके सरकार को देता है, उतना तो कुल मिलाकर उसका लाभ भी नहीं होता। कुछ वस्तुओं पर दस से बारह प्रतिशत तक कर है। यदि व्यापारी अपनी कुल बिक्री का पाँच प्रतिशत भी सरकार को दे दे तो व्यापारी का दिवाला पिट जाएगा। व्यापारी टैक्स देता है, यह असत्य है जो जानबूझकर फैलाया जाता है। गाँव का किसान शहर में माल बेचता है तो शहर का व्यापारी उससे टैक्स काटकर किसान को पैसा देता है। किसान जब उक्त व्यापारी से कपड़ा, किराना या अन्य सामान खरीदता है तब व्यापारी किसान से टैक्स जोड़कर पैसा लेता है। किसान ने सौ रुपये का अनाज बेचा तो उसे पचानवे रुपये प्राप्त हुए और वह पचानवे रुपये का सामान खरीदा तो उसे नब्बे रुपये का ही सामान प्राप्त हुआ क्योंकि वह जो कुछ बेचता है उस पर भी सरकार का टैक्स है और जो खरीदता है उस पर भी। यहाँ तक कानून बनाए गए हैं कि किसान अपना अनाज उसी व्यापारी को बेच सकता है जिसे खरीदने का सरकारी लाइसेंस प्राप्त हो। मंडी के बाहर किसान बेच नहीं सकता। मंडी के अन्दर व्यापारी यदि एकजुट हो जाएँ तो किसान अपना माल बेचने को स्वतंत्र तो है नहीं। मैंने जो लिखा है उस मुद्दे पर आप और पता करके लिखिएगा, तब बात और साफ हो जाएगी।

**प्रश्न-** निजीकरण को समाजीकरण में क्यों बदलना जरूरी है?

**उत्तर-** हम लोगों का यह मानना है कि व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकार समाज में अनेक समस्याएँ पैदा कर रहा है। इस स्वतंत्रता के कारण पारिवारिक विवाद भी बढ़ रहे हैं और आपराधिक घटनाएँ भी बढ़ रही हैं, इसलिए व्यक्तिगत संपत्ति को संयुक्त संपत्ति में बदलना आवश्यक है। किन्तु संपत्ति एक मौलिक अधिकार है और उसकी सहमति के बिना कोई उसकी संपत्ति नहीं ले सकता। इसलिए हम लोगों ने यह व्यवस्था बनाई कि व्यक्ति का परिवार से जुड़ना अनिवार्य है और संपत्ति को परिवार में संयुक्त कर देना ही इसका सबसे अच्छा समाधान है। इसीलिए हम लोग परिवार में संपत्ति को संयुक्त मान रहे हैं और इसे समाजीकरण का नाम दे रहे हैं क्योंकि व्यक्ति और समाज के बीच व्यवस्था की पहली इकाई परिवार से ही शुरू होती है।

# नयी समाज व्यवस्था

## 1 सामूहिक मंथन से निकले निष्कर्ष और सामान्य पोस्ट

मैं नई समाज व्यवस्था पर प्रतिदिन प्रातःकाल एक पोस्ट लिखता हूँ। मैं जो कुछ भी लिखता हूँ, उसके पहले मैंने लंबे समय तक चिंतन किया है। चिंतन के बाद विपरीत विचारों वाले लोगों को एक साथ जोड़कर मंथन करता हूँ। मंथन के बाद एकांत में बैठकर कुछ निष्कर्ष निकालता हूँ और वह निष्कर्ष जनहित में प्रातःकाल आपके सामने मक्खन के रूप में प्रस्तुत करता हूँ। यह मक्खन कोई मेरा अकेले का विचार नहीं है, बल्कि बहुत लोगों के साथ चिंतन-मंथन करने के बाद निकला हुआ निष्कर्ष है। प्रातःकाल के बाद मैं दो-तीन और पोस्ट करता हूँ, जो लगभग मठा होता है, जो सामान्य चर्चा के लिए होता है। मैं यह महसूस करता हूँ कि वर्तमान दुनिया में युग-परिवर्तन का समय आ गया है और इस युग-परिवर्तन में हम सब की भी कोई न कोई सक्रिय भूमिका होनी चाहिए। इस संस्था में अलग-अलग प्रकार के लोग जुड़कर अलग-अलग तरीके से काम कर रहे हैं। कुछ लोग चिंतन करते हैं, मंथन करते हैं और कुछ लोग क्रिया भी करते हैं। आज भी इस टीम के लोग ओडिशा में इस दिशा में यात्रा कर रहे हैं। इस तरह हमारे अनेक साथी इस व्यवस्था-परिवर्तन, युग-परिवर्तन की दिशा में सक्रिय हैं। आप भी चाहे तो इस कार्य में जुड़ सकते हैं। आप जब चाहें तब रात 7:30 बजे ज़ूम पर चिंतन-मंथन में भाग ले सकते हैं। आप जब चाहें तब अपने क्षेत्र में एक छोटी सी बैठक रखकर हमारे साथियों को आमंत्रित कर सकते हैं। आप जब चाहें तब हमारी संस्था के मित्रों के साथ मोबाइल पर या ज़ूम पर प्रत्यक्ष संवाद कर सकते हैं। आप जब चाहें तब हमारी वेबसाइट पर हम लोगों का पूरा साहित्य भी पढ़ सकते हैं। व्यवस्था-परिवर्तन, युग-परिवर्तन के इस कार्य में हम आप यथाशक्ति मिलकर साथ चलें। आप इस कार्य में सहभागी के रूप में भी जुड़ सकते हैं, विरोधी के रूप में भी जुड़ सकते हैं, समीक्षक और आलोचक के रूप में भी जुड़ सकते हैं। आप जैसा चाहें, आपकी पूरी स्वतंत्रता है। हम आपका इस कार्य में सहयोग

करेंगे, सम्मान भी करेंगे। आप यदि आगे बढ़कर इसमें कुछ करना चाहते हैं तो हमारी टीम का आपको पूरा सहयोग मिलेगा। पूरी दुनिया में जो भी लोग इस दिशा में सक्रिय होंगे, हमारी पूरी टीम उनके साथ खड़ी है। हम आप मिलकर विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

## 2 न्याय की पश्चिमी परिभाषा में मूलभूत परिवर्तन का प्रस्ताव

नई समाज व्यवस्था में हम न्याय की पश्चिम से आई हुई परिभाषा और तरीका दोनों को बदल देंगे। हम पुरानी परिभाषा को इस प्रकार बदलेंगे कि चाहे कितने भी अपराधी छूट जाएँ, लेकिन किसी निर्दोष को दंड न हो। इसे हम बदलकर यह करेंगे कि ना कोई अपराधी बचे और ना कोई निर्दोष दंडित हो। इसी तरह हम पुरानी न्याय की प्रक्रिया को भी बदल देंगे। पुलिस जिस व्यक्ति को अपराधी सिद्ध करेगी, और पुलिस तथा ग्राम सभा मिलकर जो दंड देगी, यदि वह दंड स्वीकार नहीं है तो व्यक्ति न्यायालय में अपील कर सकता है। अपने को निर्दोष सिद्ध करने की जिम्मेदारी उस अपीलकर्ता की होगी। यदि कोई अनावश्यक अपील करेगा तो सारा खर्च उस व्यक्ति को वहन करना होगा। इस तरह हम न्यायालय को महंगा कर देंगे। हम प्रयास करेंगे कि न्यायपालिका के पास कम से कम मामले जाएँ। हम यह भी प्रयास करेंगे कि न्याय की तुलना में समझौता को अधिक महत्व दिया जाए। मैं कई मामले ऐसे देख रहा हूँ कि उच्च न्यायालय कोई निर्णय देता है और सर्वोच्च न्यायालय उसे पलट देता है। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी डबल बेंच में पलट जाता है। इस तरह न्यायालय में भी आमतौर पर एकता नहीं होती, इसलिए लोग बाल की खाल निकालने के लिए हर मामले में न्यायालय का सहारा लेने लगे हैं। हम इस बाल की खाल निकालने वाली परिपाटी को बदल देंगे। अपील करना खिलवाड़ नहीं, बल्कि एक गंभीर मामला होगा। इस तरह नई व्यवस्था में हम न्याय की तुलना में समझौता को अधिक महत्वपूर्ण बनाएंगे।

## 3 विश्व समाज को अंतिम इकाई मानने की अवधारणा

नई समाज व्यवस्था में राष्ट्र व्यवस्था की अंतिम इकाई नहीं होगा, बल्कि अंतिम इकाई विश्व समाज को माना जाएगा। व्यवस्था की पहली इकाई परिवार को माना जाएगा। वर्तमान समय में भारत राज्यों का संघ है, नई व्यवस्था में भारत परिवारों का संघ बनेगा। किसी भी मतदान में जो इकाई भाग लेगी, उस इकाई की आबादी के हिसाब से गणना की जाएगी। अर्थात विश्व व्यवस्था में यदि भारत कहीं वोट देगा, तो भारत की आबादी 140 करोड़ मानी जाएगी, न कि एक। इस तरह प्रदेश की सरकारें समाप्त हो जाएँगी। सरकार केवल एक होगीकृकेंद्र में, और उसके अधिकार भी बहुत सीमित होंगे। अधिकांश अधिकार केंद्र सभा को चले जाएँगे। इस तरह वर्तमान में प्रदेशों के स्थान पर एक नई केंद्र सभा की इकाई बन जाएगी, जो परिवार तक जाएगी। इस तरह भारत प्रदेशों का संघ न होकर परिवारों का संघ होगा और भारत विश्व व्यवस्था का एक अंग होगा। जब तक विश्व संविधान नहीं बनता है, विश्व सरकार नहीं बनती है, तब तक के लिए अस्थायी रूप से हम भारत सरकार को मान्यता देते रहेंगे।

## 4 समाज में बढ़ती हिंसा और सशक्त राज्य व्यवस्था का प्रस्ताव

हम समाज में बढ़ती हुई हिंसा का कारण समझते हैं और उसका समाधान भी समझ रहे हैं। समाज में वर्तमान समय में जो बढ़ी हुई हिंसा दिख रही है, उसके प्रमुख कारणों में से एक गांधी की अहिंसा का विकृत प्रचार है। गांधी की अहिंसा समाज में होनी चाहिए, इस बात से मैं पूरी तरह सहमत हूँ, लेकिन राज्य को या तो समुचित हिंसा करनी चाहिए या अधिक हिंसा करनी चाहिए। राज्य को न्यूनतम हिंसा नहीं करनी चाहिए। या तो गांधी ने गलत कहा, या गांधी के कथन को गलत प्रस्तुत किया गया। कारण चाहे जो भी हो, लेकिन राज्य द्वारा न्यूनतम हिंसा का सिद्धांत अपनाए जाने के कारण समाज में असुरक्षा का भाव पैदा हुआ और समाज अपनी सुरक्षा के लिए स्वयं हिंसा का मार्ग अपनाने लगा। सावरकरवादी और सुभाषवादी विचारधारा ने इस विचार को और सशक्त किया। इसका समाधान यही हो सकता है कि राज्य सबकी सुरक्षा की गारंटी दे। राज्य अपराधियों पर अधिकतम बल प्रयोग करे। ये मानवाधिकारवादी, जेल-सुधारवादी आदि सब बेकार के चोचले हैं। राज्य को इन सब से मुक्त होकर कठोर दंड की व्यवस्था करनी चाहिए। शीघ्र न्याय और कठोर दंड ही समाज में अहिंसा के प्रचारक हो सकते हैं। हम नई व्यवस्था में कठोर दंड की व्यवस्था करेंगे। हम अल्पकाल के लिए फाँसी की संख्या भी बढ़ाएँगे। यदि जरूरत पड़ेगी तो खुलेआम फाँसी दी जाएगी और यदि उससे भी अधिक जरूरत पड़ेगी तो आम जनता के बीच में किसी खूंखार अपराधी की बोटी-बोटी भी काटी जाएगी। लेकिन अपराधियों के मन में भय पैदा होना ही चाहिए। हम इसकी पूरी व्यवस्था करेंगे। हम न्यूनतम हिंसा के गांधी मार्ग को पलट देंगे।

## 5 समानता आधारित शासन और आयोगों का पुनर्गठन

नई राजनीतिक व्यवस्था में हम या तो सभी प्रकार के आयोग समाप्त कर देंगे अथवा उन आयोगों में सिर्फ विपरीत वर्ग के लोग ही रखे जाएंगे। महिला आयोग, युवा आयोग, कर्मचारी आयोग, मानव अधिकार आयोग और पता नहीं कितने बेमतलब के सफेद हाथी बनाकर इन्हें जीवित रखा जा रहा है। इनका कोई काम नहीं है। सरकार का काम समाज में इस तरह विभाजन करना नहीं है। फिर

भी हमारा यह मानना है कि यदि महिला आयोग बनाना ही है, तो महिला आयोग में सिर्फ पुरुषों को रहना चाहिए। महिलाएँ अपनी समस्याएँ पुरुषों को बताएँगी, पुरुष उसका समाधान करेंगे। पुरुष आयोग यदि बनता है, तो उसमें सिर्फ महिलाएँ ही होनी चाहिए, क्योंकि माँगने वाला आयोग नहीं बना सकता, देने वाला बनाएगा। इसलिए हमारा यह मानना है कि सभी प्रकार के आयोगों को तत्काल समाप्त कर दिया जाए। हम नई राजनीतिक व्यवस्था में सभी वर्तमान आयोगों को पूरी तरह समाप्त कर देंगे। हम व्यक्ति को एक इकाई मानेंगे, न कि किसी वर्ग को। नागरिक संहिता सबके लिए समान होगी, किसी के साथ भेदभाव नहीं करेगी।

## 6 व्यक्ति आधारित लोकतंत्र बनाम दल आधारित राजनीति

हम नई समाज व्यवस्था में परिवार में भी वैसा ही लोकतंत्र लागू करेंगे जैसा विश्व व्यवस्था में होगा या राष्ट्र व्यवस्था में होगा। हम जीवन पद्धति से लोकतंत्र शुरू करेंगे, सिर्फ शासन पद्धति में नहीं, जैसा अभी है। हम परिवार व्यवस्था में आदर्श लोकतंत्र बनाएंगे, विकृत लोकतंत्र नहीं, जैसा अभी भारत में या दुनिया में दिख रहा है। स्पष्ट है कि हम संसदीय लोकतंत्र नहीं, बल्कि सहभागी लोकतंत्र बनाएंगे और यही लोकतंत्र परिवार से लेकर राष्ट्र तक और विश्व तक जाएगा। हम राष्ट्र की वर्तमान व्यवस्था में जो बीजेपी, कांग्रेस या अन्य दलगत राजनीति है, उसको पूरी तरह समाप्त कर देंगे। हम दलों की मान्यता नहीं रखेंगे, हम सिर्फ व्यक्तियों की मान्यता रखेंगे। इस तरह आदर्श लोकतंत्र दलीय लोकतंत्र नहीं होगा, बल्कि संसद में प्रत्येक सांसद को पूरी तरह स्वतंत्रता होगी। हम दल-बदल कानून को भी समाप्त कर देंगे, क्योंकि जब दलीय लोकतंत्र रहेगा ही नहीं, तो दल-बदल कानून का क्या औचित्य है? इस प्रकार परिवार व्यवस्था से लेकर राष्ट्र व्यवस्था तक हम निर्दलीय लोकतंत्र बनाएंगे।

## 7 समाज व्यवस्था में विश्वास, सावधानी और सहअस्तित्व

नई राजनीतिक व्यवस्था में समान नागरिक संहिता होगी। व्यक्ति एक इकाई होगा। धर्म, जाति, भाषा के आधार पर या महिला-पुरुष के आधार पर कानून में कोई भेदभाव नहीं होगा। लेकिन समाज व्यवस्था में हिंदू और मुसलमान के बीच कुछ अंतर कायम रहेगा। आमतौर पर मुस्लिम संस्कृति को संगठन-प्रधान और कट्टर माना जाता है। वह हर समय मरने-मारने को तैयार रहते हैं, जिसे हम आम हिंदू पसंद नहीं करते। ऐसी स्थिति में आम हिंदुओं का मुसलमानों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए, इस संबंध में भी हम सामाजिक चिंतन करते रहते हैं। हमारे विचार में हम इन सबको चार भागों में बाँट सकते हैं। जो कट्टरवादी मुसलमान हैं और क्रिया में भी सक्रिय हैं,संगठित हैं, आंदोलनरत हैं, हिंसक हैं, इस प्रकार के लोगों को बहुत अधिक कठोर दंड देने की जरूरत है। लेकिन जो कट्टर हिंदू हैं, जो संगठित हैं, हिंसा पर विश्वास करते हैं, उस प्रकार के लोगों को भी दंड देना आवश्यक है, भले ही वह कट्टरवादी मुसलमानों की तुलना में कम क्यों न हो। इसी तरह जो शांतिप्रिय मुसलमान हैं, उन मुसलमानों के साथ हम अच्छे संबंध बना सकते हैं, लेकिन हम उनसे सावधान रहेंगे, क्योंकि वे सांस्कृतिक धरातल पर कट्टर हैं और व्यवहार में ही शांतिप्रिय हैं। इसलिए हम सावधान रहेंगे। लेकिन जो शांतिप्रिय हिंदू हैं, हम उनके साथ पूरी तरह इकट्ठा होकर, विश्वासपूर्वक संबंध बना सकते हैं। इस प्रकार हम हिंदू और मुसलमानों के बीच व्यावहारिक विभाजन कर सकते हैं। लेकिन हम इस बात की पूरी सावधानी रखेंगे कि किसी भी परिस्थिति में किसी शांतिप्रिय मुसलमान को कोई कट्टरवादी हिंदू परेशान न कर सके। सिर्फ कट्टरवादी मुसलमानों को परेशान करने के मामले में ही हम कट्टरवादी हिंदुओं का उपयोग कर सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि समाज व्यवस्था पर शांतिप्रिय हिंदुओं का निर्णायक प्रभाव होगा, कट्टरवादी हिंदुओं का नहीं। दूसरी बात यह है कि शांतिप्रिय मुसलमानों को हम कट्टरवादी हिंदुओं की तुलना में अच्छा समझेंगे।

## 8 समाज और सरकार के बीच नए संतुलन की खोज

हम वर्तमान में समाज और राज्य के बीच जिस तरह का संबंध है, उसे पूरी तरह बदल देंगे। वर्तमान समय में राज्य समाज का मालिक बन गया है और राज्य समाज को आदेश देता है। हम इसको उलट देंगे। समाज सरकार को यह आदेश देगा कि हमें तुमसे कुछ भी नहीं चाहिए, हमें अपने हाल पर छोड़ दो। अर्थात सारे निर्णय सामाजिक व्यवस्था करेगी। राज्य व्यवस्था समाज की आंतरिक व्यवस्था में किसी तरह का कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती। हम अपने तरीके से जिएँगे, मरेंगे; वह तरीका हम तय करेंगे, राज्य तय नहीं कर सकता। राज्य का केवल एक काम होगा कि वह हमारे मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी दे। अर्थात समाज सब कुछ कर सकता है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति उद्दंडता करता है, कोई अपराध करता है, तो समाज उस व्यक्ति को दंडित नहीं करेगा। उस व्यक्ति को दंडित करने की जिम्मेदारी राज्य की होगी। इस गारंटी के अतिरिक्त राज्य को कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हम नई व्यवस्था के अंतर्गत राज्य की तुलना में समाज को मालिक मानेंगे। राज्य समाज का मैनेजर होगा। सिर्फ व्यक्ति की उद्दंडता से सुरक्षा राज्य की जिम्मेदारी होगी, अन्य कोई कार्य नहीं। जब तक समाज राज्य को कोई और जिम्मेदारी न दे, तब तक राज्य मनमानी नहीं करेगा। हम इस तरह की नई व्यवस्था बनाएंगे।

## बाल विवाह कानून की समाप्ति और विवाह की स्वतंत्रता का सिद्धांत

नई संवैधानिक व्यवस्था में हम बाल विवाह कानून को पूरी तरह समाप्त कर देंगे। कोई भी व्यक्ति किसी भी उम्र में विवाह करने के लिए स्वतंत्र होगा। उस पर किसी प्रकार का कानूनी प्रतिबंध नहीं होगा। विवाह की उम्र क्या हो, यह परिवार तय करेगा या समाज तय करेगा; सरकार तय नहीं कर सकती। वैसे भी सेक्स प्राकृतिक अधिकार है, मौलिक अधिकार है। आप उस पर तब तक रोक नहीं लगा सकते, जब तक उसने किसी के साथ बल प्रयोग न किया हो। जो विवाह लड़के-लड़की की स्वीकृति, परिवार की सहमति और समाज की अनुमति से हो रहा है, उस विवाह में उम्र के नाम पर सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती। वर्तमान समय में सरकारों ने यह मान लिया है कि आम नागरिक नासमझ है; परिवार, गाँव या राष्ट्र कुछ नहीं समझता। समझदारी का सारा ठेका राजनेताओं के पास है। अब इस ठेकेदारी को समाप्त करने की आवश्यकता है। राज्य समाज का मैनेजर है, मालिक नहीं। इसलिए हम बाल विवाह को एक जबरदस्ती थोपा हुआ कानून मानते हैं। जो भी लोग बाल विवाह के खिलाफ प्रचार कर रहे हैं, वे सब सरकारी एजेंट हैं; वे समाज के प्रतिनिधि नहीं हैं। विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है, संवैधानिक या कानूनी नहीं।

## ब्लैक मार्केट, तस्करी और मिलावट पर नई राजनीतिक व्यवस्था का दृष्टिकोण

हम नई राजनीतिक व्यवस्था में ब्लैक, तस्करी, मिलावटकृइन सबका नए तरीके से समाधान करेंगे, क्योंकि वर्तमान तरीका इन्हें रोकने में असफल भी है और गैर-जरूरी भी है। हम सभी प्रकार की निजी संस्थाओं को अपने उत्पादन की बिक्री की स्वतंत्रता देंगे। इस तरह ब्लैक नाम की चीज़ खत्म हो जाएगी। हम हवाई जहाज़ का किराया, स्कूल की फीस, अस्पताल का खर्चकृइनकी कोई रोकथाम नहीं करेंगे। स्कूल और कॉलेज अपनी फीस कितनी भी ले सकते हैं। इसी तरह हम देश भर में हर वस्तु के आवागमन की स्वतंत्रता देंगे। कुछ अनिवार्य वस्तुओं पर ही इस तरह के नियम हो सकते हैं, अन्यथा सामान्यतः सभी वस्तुओं के आवागमन की छूट होगी। इस तरह तस्करी भी पूरी तरह खत्म हो जाएगी। मिलावट के संबंध में हम यह नियम बनाएंगे कि कोई व्यक्ति यदि किसी वस्तु के शुद्ध होने की गारंटी देगा और वह शुद्ध नहीं होगी, तभी उसे अपराध माना जाएगा। अन्यथा किसी प्रकार की मिलावट को अपराध नहीं माना जाएगा। खुले में जो चीज़ बिकेगी, उसकी मिलावट को मिश्रण माना जाएगा और उसे खरीदना या न खरीदना खरीदने वाले की जिम्मेदारी होगी। इस तरह हम मिलावट को भी सीमित कर देंगे। स्पष्ट है कि जब तक सामान बेचने वाले ने धोखाधड़ी के उद्देश्य से मिलावट नहीं की है, तब तक मिलावट को अपराध नहीं माना जाएगा। दुर्भाग्य है कि वर्तमान सरकार मिलावट और मिश्रण के अंतर को नहीं समझती। इस तरह हम इन तीनों समस्याओं को समाप्त कर देंगे।

## लंबी न्यायिक प्रक्रियाओं और पुनरावृत्त सुनवाई की आलोचना

हम आज सुबह से न्यायिक प्रक्रिया पर चर्चा कर रहे हैं। यह पश्चिम से आया हुआ एक गलत सिद्धांत है कि न्याय होना ही नहीं, दिखना भी चाहिए। यह न्याय दिखने के नाटक में देश का कितना धन और कितनी ताकत बर्बाद होती है, इसका अंदाज़ इस सिद्धांत को बनाने वालों को न था, न है। आप गंभीरता से सोचिए कि साल भर से सुप्रीम कोर्ट और नीचे की संस्थाएँ सब कुत्ता-कुत्ता खेल रहे हैं। कोई कह रहा है कि कुत्ते को मार देना चाहिए, कोई कह रहा है कि कुत्ता एक प्राणी है, उसकी सुरक्षा होनी चाहिए। अरे भाई, एक बार जब निर्णय हो गया, सुप्रीम कोर्ट का फैसला हो गया, तो बार-बार यह नाटक करने की क्या ज़रूरत है? न्याय दिखना चाहिए, फिर सुप्रीम कोर्ट में अपील, फिर कोई सिरफिरा खिलाड़ी, नाटकबाज़ सुप्रीम कोर्ट में अपील कर देगा और फिर न्यायालय कहेगा न्याय होना ही नहीं, दिखना भी चाहिए। हटाइए यह बेकार सिद्धांत। अब सीधा आप बताइए कि न्याय होना ही चाहिए। यह बार-बार अपील और बार-बार तमाशा उचित नहीं है। इस तरह के नाटक करने वालों पर कड़ा अर्थदंड लगना चाहिए। मैंने तो 50 साल पहले ही कह दिया था कि कुत्ते को मौलिक अधिकार नहीं है और इसलिए कुत्तों की संख्या एक सीमा से अधिक यदि बढ़ती है, तो उसे किसी भी तरीके से मारा जा सकता है। इतना साफ-साफ सिद्धांत होते हुए भी यह कुत्ता-कुत्ता खेल रहे हैं। जो न्यायपालिका बार-बार इस तरह सुनवाई कर रही है, उस पर भी राष्ट्रपति को सवाल उठाना चाहिए।

## केशव चौबे जी से संवाद और समाज-परिवर्तन की चर्चा

मैं आमतौर पर व्यक्तिगत चर्चाएँ करने से बचता हूँ, फिर भी मैंने कल केशव चौबे जी तथा अपने कार्यालय के लिए गाड़ी की व्यक्तिगत चर्चा यही सोचकर की थी कि यह चर्चा भी आपके बीच जानी चाहिए। अब मैं आज के विषय पर चर्चा करता हूँ। बलात्कार लगातार बढ़ रहे हैं, लेकिन हमारी नासमझ सरकार तथा मीडिया बलात्कार के कारणों पर विचार न करके गलत दिशा में कार्य कर रहे हैं। बलात्कार के चार कारण हो सकते हैं। पहला है पुरुषों में सेक्स की आवश्यकता की मात्रा, दूसरा है उनके अंदर सेक्स की बढ़ती इच्छाएँ, तीसरा है सेक्स-पूर्ति में आने वाली बाधाएँ और चौथा है पुरुषों में सेक्स के प्रति भय का अभाव। वर्तमान समय में आवश्यकता भी बढ़ रही है। खान-पान और जीवन-पद्धति आवश्यकताएँ बढ़ा रही हैं। इच्छाएँ भी बढ़ रही हैं, क्योंकि वर्तमान सामाजिक

वातावरण जल्दी इच्छाएँ पैदा कर रहा है और इच्छाओं को बढ़ा भी रहा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सेक्स के मामलों में अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी कर दी गई हैं। महिला-पुरुष के संबंधों में भी अनेक प्रकार की बाधाएँ हैं। वेश्यालय भी रोक दिए गए हैं। अप्राकृतिक सेक्स को भी रोक दिया गया है। इस प्रकार बड़ी-बड़ी बाधाएँ खड़ी कर दी गई हैं। विवाह की उम्र भी बढ़ा दी गई है और यह नासमझ सरकार सिर्फ भय के आधार पर सेक्स को नियंत्रित करना चाहती है, जो बलात्कार के रूप में समाज के सामने विभत्स स्वरूप में प्रकट हो रहा है। हम नई व्यवस्था में सेक्स को रोकने वाली सारी बाधाएँ दूर कर देंगे। हम अप्राकृतिक सेक्स की स्वतंत्रता देंगे, वेश्यालय भी खोल देंगे, विवाह की उम्र भी कम कर देंगे। हम बलपूर्वक किसी के साथ किए गए बलात्कार को ही अपराध मानेंगे, बाकी सब प्रकार की स्वतंत्रता दे देंगे। अन्य तरीकों से सेक्स पर नियंत्रण करना समाज का काम होगा, परिवार का काम होगा, सरकार का नहीं। हम दूसरों के काम में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। आज मेरी फोन पर अपने मित्र केशव चौबे जी से बात हुई। वे मुझसे भी 8 वर्ष बड़े हैं। अभी उनकी उम्र 95-96 वर्ष हो गई है। इसके बाद भी उनसे अच्छी चर्चा हुई। उन दिनों की याद ताज़ा हो गई, जब लगभग 46 वर्ष पहले मैं, केशव चौबे जी, रोशनलाल जी, लरंग साय जी और रामविचार जी मिलकर 1500 किलोमीटर की एक महीने की सरगुजा की राजनीतिक और सामाजिक यात्रा किए थे। उस समय हम सब मिलकर पूरे देश का भविष्य बदलने का सपना देख रहे थे। भविष्य बदला या नहीं बदला, यह तो पता नहीं है। लरंग साय जी अब इस दुनिया में नहीं हैं। रोशनलाल जी भी नहीं हैं। रामविचार जी अभी छत्तीसगढ़ में मिनिस्टर हैं। मैं अब रायपुर में रहकर आराम कर रहा हूँ और चौबे जी इस उम्र में बिस्तर पर हैं। फिर भी हम लोगों को वह याद ज़रूर आती है कि हम लोगों ने भी यथाशक्ति व्यवस्था-परिवर्तन के कार्य में अपनी धूल झाड़ी है। भले ही हम नल-नील न सिद्ध हो सके हों, लेकिन गिलहरी के रूप में तो हमें इतिहास याद करेगा ही।

## गांधी-विवेकानंद संवाद नरम हिंदुत्व और लोक स्वराज का संगम

यह भी एक रहस्य ही बना हुआ है कि इतने लंबे समय तक गांधी और विवेकानंद के बीच कभी कोई सुलह नहीं हुई और पिछले सात-आठ वर्षों से दोनों एक साथ मिलकर काम कर रहे हैं। आज संघ के नेतृत्व की नरेंद्र मोदी सरकार गांधी के मार्ग पर चल रही है और गांधीवादी वर्तमान समय में मोहन भागवत को अपना आदर्श मान रहे हैं। यह विचित्र सहयोग पिछले सात-आठ वर्षों से बना है, क्योंकि यह बात जगजाहिर थी कि गांधीवादियों पर कम्युनिस्टों का बहुत ज्यादा प्रभाव था और संघ पर सावरकरवादियों का। जब तक संघ सावरकरवादियों से मुक्त नहीं होता और जब तक गांधीवादी कम्युनिस्टों से मुक्त नहीं होते, तब तक यह विवाद निपटना असंभव था। हम लोगों ने लंबे समय से यह प्रयत्न किया कि देश के अच्छे लोग एक साथ हो जाएँ और इस मामले में गांधीवादी और संघ के लोगों का एक साथ जुड़ना अधिक आवश्यक है, क्योंकि दोनों के विचार एक हैं, लेकिन अतिवादी लोग दोनों के मिलने को रोक रहे हैं। हम लोगों ने वह बाधा दूर कर दी। अब गांधीवादियों में कम्युनिस्ट लगभग नहीं के बराबर हैं। सब बाहर कर दिए गए हैं। सब संपत्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं, पोस्ट की लड़ाई लड़ रहे हैं और गांधीवादी लोकस्वराज की लड़ाई लड़ रहे हैं। दूसरी तरफ संघ ने भी प्रवीण तोगड़िया तथा कुछ अन्य सावरकरवादियों से किनारा कर लिया है। अब तो वे हिंदू-विरोधियों के साथ मिलकर मोदी-भागवत को ही चुनौती दे रहे हैं। इस तरह हम लोगों के प्रयत्न से पिछले 8 वर्षों में यह एक बहुत बड़ा काम सफल हुआ है। अब भारत ही नहीं, सारी दुनिया में नरम हिंदुत्व का प्रभाव बढ़ेगा, क्योंकि हम अतिवादी कम्युनिस्टों और अतिवादी सावरकरवादियों से मुक्त हो चुके हैं। सावरकरवादियों ने बहुत मेहनत करके सवर्ण और अवर्ण के मुद्दे को उछालना चाहा था, जो लगभग बेमौत मर गया है।

## बंगाल चुनाव के बाद मुस्लिम समाज का आत्ममंथन

बंगाल का चुनाव होने के बाद मुसलमान इस बात पर गंभीरता से सोच रहा है कि उसे क्या करना चाहिए। जब वह अपने बच्चों को देखता है, तब उसे ऐसा लगता है कि मुझे भारत में ही रहना है, मिल-जुलकर रहना है। मुझे बराबरी के आधार पर रहने में क्या कठिनाई है? मैं भारत से अपने परिवार या संपत्ति को लेकर कहीं जाने की स्थिति में नहीं हूँ, इसलिए मुझे अपनी संकीर्ण सोच में बदलाव लाना चाहिए। दूसरी तरफ, जब उसे कट्टरवादी मुसलमान जाकर समझाते हैं कि तुम्हें खुदा पर भरोसा रखना चाहिए। खुदा तुम्हें हारने नहीं देगा। दुनिया में मुसलमान की ताकत बहुत बड़ी है और दुनिया का मुसलमान कभी भी पीछे नहीं हटा। हम जिस भारत पर सैकड़ों वर्षों तक राज कर चुके हैं, उस भारत में अब इस तरह की कायरता की सोच उचित नहीं है। हम मुसलमान हैं, हम शेर हैं, हम मरना-मारना जानते हैं। हमें गायों से डरने की क्या जरूरत है? तब उसके अंदर एक जोश पैदा हो जाता है और जोश में आकर वह पत्थर चलाना शुरू कर देता है। जब जेल जाता है, तब कसम खाता है कि कभी पत्थर नहीं चलाऊँगा और जब कट्टरपंथी मिल जाते हैं, फिर वह पत्थर चलाने में शामिल हो जाता है। यह बात सच है कि कुछ कट्टरपंथी मुसलमान ही भारत के मुसलमान के लिए समस्या बने हुए हैं, लेकिन मुसलमान कट्टरपंथी मुसलमान से मुक्त नहीं हो पा रहा है और न वह अपने बाल-बच्चों का भविष्य सोच

पा रहा है। फिर भी धीरे-धीरे शांतिप्रिय मुसलमानों की संख्या बढ़ रही है। शिक्षा के क्षेत्र में या अन्य मामलों में वे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं, भले ही उनकी अभी गति बहुत कम है। बंगाल चुनाव के बाद अब ऐसा लगता है कि मुस्लिम सांप्रदायिकता की हिम्मत टूट रही है। मैं अपने कट्टरपंथी हिंदू भाइयों से भी निवेदन करूँगा कि वे सरकार पर भरोसा करें, अपनी एकता मजबूत करें, साथ ही शांतिप्रिय मुसलमानों को शांति से सोचने का अवसर दें। बार-बार उन्हें ललकारना अच्छी बात नहीं है।

## रामानुजगंज से प्रारंभ होगा लोकतंत्र के पुनर्निर्माण का अभियान

हम रामानुजगंज के कुछ साथियों ने देश भर के साथियों के साथ मिलकर दुनिया की प्रमुख समस्याओं के कारणों पर खोज की। 70 वर्षों की खोज के बाद हमारा यह निष्कर्ष निकला कि जब तक संविधान तंत्र से स्वतंत्र नहीं होता, तब तक कोई भी समाधान संभव नहीं है, क्योंकि यदि नाव की रस्सी पेड़ से बंधी हुई है तो आप चाहे दिन-रात नाव चलाते रहिए, नाव चलती रहेगी और वहीं की वहीं रह जाएगी। इसलिए जिस तरह नाव की रस्सी खोलना आवश्यक है, उसी तरह लोकतंत्र में तंत्र से बंधी हुई लोक की रस्सी को भी स्वतंत्र करना जरूरी है। लोकतंत्र दो शब्दों का मिलन है। इसमें हैं लोक और तंत्र। आदर्श स्थिति में तो लोकतंत्र की पश्चिम की परिभाषा को रिजेक्ट करके लोक-नियंत्रित तंत्र की परिभाषा स्वीकार करनी चाहिए, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा संभव न हो तो लोक और तंत्र यह परिभाषा बननी चाहिए, जिसमें लोक और तंत्र के बीच में संविधान रूपी एक पुल होना चाहिए। इस पुल के माध्यम से ही दोनों एक साथ हो सकते हैं। हम तत्काल पूरी दुनिया को तो यह संदेश नहीं दे सकते, लेकिन भारत से शुरुआत कर सकते हैं। वर्तमान समय में मां संस्थान ने इस संशोधित लोकतंत्र की परिभाषा को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी स्वीकार की है। मां संस्थान का यह मानना है कि यदि लोकतंत्र की यह परिभाषा मान्य हो गई, तो दुनिया की सभी समस्याओं के समाधान के मार्ग खुल जाएंगे। मेरा अपने सभी साथियों से निवेदन है कि दिन-रात नाव चलाने की अपेक्षा पेड़ से बंधी नाव की रस्सी को खोलने की शुरुआत करें। लोकतंत्र की सही परिभाषा को बदलने का समय आ गया है। संविधान को तंत्र के एकाधिकार से मुक्त कीजिए, समस्याओं के समाधान का मार्ग खुल जाएगा।

## खतरों को समझने और उनसे निपटने का मेरा अनुभव

मैं बचपन से ही यह बात अच्छी तरह समझता था कि हिंदू सामान्यतया गाय के स्वभाव का होता है, मुसलमान अपने को शेर मानता है और कम्युनिस्ट हर समय साँप के समान होता है। इन तीनों का स्वभाव अलग-अलग है। कम्युनिस्ट किसी भी सीमा तक आपके घर में घुसकर, आपकी रसोईघर में या बिस्तर पर भी छिपकर रह सकता है। कम्युनिस्ट आपको किसी भी सीमा तक धोखा दे सकता है। मुसलमान धार्मिक मामलों को छोड़कर अन्य मामलों में धोखा नहीं देते। दूसरी बात यह है कि मुसलमान पत्थर चलाना जानता है, मारना जानता है। वह आपके सामने से आक्रमण कर सकता है, पीछे से नहीं करता, जबकि कम्युनिस्ट आक्रमण करने के बाद मलहम-पट्टी भी करता है। इन सब बातों को समझने के बाद भी मेरा अपना यह स्वभाव रहा कि मैं खतरों से कभी भागता नहीं, बल्कि उसके साथ जुड़कर उसकी तह तक खोज करता हूँ। यही कारण है कि मुझे मध्य प्रदेश सरकार ने नक्सलवादी घोषित करके मेरी हत्या की योजना बनाई और संघ ने मुझे मुसलमान का मित्र घोषित कर दिया, लेकिन मैं इन सब के बाद भी अपनी बात पर अटल रहा। मैंने न कभी सरकार की परवाह की, न कभी संघ से समझौता किया। मैं हमेशा साम्यवादियों और मुसलमानों से सावधान रहा और आज मैं यह कहने की स्थिति में हूँ कि मैं बिल्कुल सही था। साँप को पहचानना बहुत कठिन है कि वह ज़हरीला है या नहीं, इसलिए साँप को देखते ही मार देना चाहिए और बाघ को देखते ही घर में छिप जाना चाहिए। बाघ से बचने के लिए सरकार रूपी शिकारी आएगा, आपको सुरक्षा देगा और साँप से सुरक्षा आपको स्वयं करनी पड़ेगी।

## फलता उपचुनाव के नतीजे और बंगाल की बदलती राजनीति

बंगाल में 15 दिन पहले चुनाव का नतीजा आ चुका था। एक सीट पर चुनाव दोबारा कराया गया और यह बात साफ दिख रही थी कि इस फलता उपचुनाव में बीजेपी साधारण बहुमत से जीत जाएगी, क्योंकि ममता बनर्जी का भी मनोबल गिरा हुआ था और उम्मीदवार का भी मनोबल कमजोर था। फिर भी चुनाव का नतीजा अप्रत्याशित रहा है। इस नतीजे ने कई सवाल खड़े कर दिए हैं। फलता में हुए मतदान में लगभग 1 लाख 20 हजार हिंदुओं ने मतदान किया और 80 हजार मुसलमानों ने मतदान किया। कुल मतदान 2 लाख 90 हजार के आसपास हुआ। प्रश्न उठता है कि जब 1 लाख 20 हजार हिंदुओं ने मतदान किया, तो 1 लाख 50 हजार वोट बीजेपी को कहाँ से मिले? यह प्रश्न भी खड़ा होता है कि जब वहाँ 80 हजार मुसलमानों ने वोट दिया, तो कम्युनिस्ट पार्टी को 40 हजार वोट मिले और अन्य को 10 हजार वोट मिले। बात बिल्कुल साफ है कि आधे से अधिक मुसलमानों ने भाजपा को वोट दिया। प्रश्न यह खड़ा होता है कि वहाँ टीएमसी का कितना प्रभाव था कि टीएमसी उम्मीदवार 10 हजार वोट भी नहीं पा सका। मैं मानता हूँ कि 2 दिन पहले टीएमसी के जहाँगीर खान ने अपने को अलग कर लिया था, लेकिन ममता बनर्जी ने इस चुनाव से अपने को अलग नहीं किया

था। इस चुनाव के नतीजे ने यह बात साफ कर दी है कि बंगाल का मुसलमान या तो डर से अपने विचार बदलने की कोशिश कर रहा है अथवा उम्मीदवार जहाँगीर खान ने भय के कारण सरकार का समर्थन कर दिया है। कोई तीसरा कारण दिखाई नहीं देता। वर्तमान बंगाल का जो वातावरण है, उस वातावरण में अगर चुनाव हो जाए, तो एक भी सीट टीएमसी नहीं जीत पाएगी, क्योंकि बंगाल में अब डर ममता का नहीं है, टीएमसी का नहीं है। या तो डर नहीं है या यदि डर है, तो सरकार का है। ऐसे वातावरण में ममता बनर्जी के लिए यह उचित है कि वह कांग्रेस में शामिल होकर अपनी सुरक्षा की चिंता करें, छोड़ दें प्रधानमंत्री बनने का सपना। यदि ममता बनर्जी राहुल गांधी की अधीनता स्वीकार कर लें, तो ममता बंगाल में राजनीतिक आधार पर जिंदा रह सकती हैं। बंगाल का मुसलमान गुजरात, उत्तर प्रदेश की राह पर चलने की सोच रहा है और ममता नितांत अकेली खड़ी हैं। कम्युनिस्ट पार्टी को 40 हजार वोट और टीएमसी को 10 हजार वोटकृबहुत गंभीरता से सोचने का समय है।

## लोक भागीदारी आधारित न्याय प्रणाली का प्रस्ताव

हम पूरे भारत में न्याय को सस्ता और सुलभ करेंगे। इसके लिए हम यह व्यवस्था करेंगे कि गाँव-गाँव में एक समझौता न्यायालय रहे। इस समझौता न्यायालय में एक पीड़ित पक्ष का व्यक्ति, एक अपराधी, एक पीड़ित परिवार की ग्राम सभा वाला, एक अपराधी की ग्राम सभा वाला और एक पुलिस का प्रतिनिधिकृइस तरह पाँच लोग मिलकर किसी भी मामले का, चाहे वह हत्या का हो या अन्य किसी भी बात का, निपटारा कर सकेंगे। उस निपटारे के खिलाफ यदि इन पाँचों में से किसी को अपील करनी होगी, तो वह जिला समझौता न्यायालय में भी अपील कर सकता है और वह चाहे तो सरकारी न्यायालय में भी अपील कर सकता है। लेकिन अपील होने के बाद अपने को सही सिद्ध करने की जिम्मेदारी अपील करने वाले की ही होगी, समझौता न्यायालय की नहीं। इस तरह लगभग सभी मुकदमों का 3 महीने के अंदर फैसला कर दिया जाएगा। कुछ गिने-चुने मुकदमे ही न्यायालय में जाएंगे। न्यायालय में भी जो व्यक्ति अनावश्यक अपील करेगा, उस पर भारी दंड लगाया जाएगा। इस तरह अपीलों को भी निरुत्साहित किया जाएगा। हम यह नहीं चाहते हैं कि मुकदमेबाज हमारी इस न्याय-प्रणाली का दुरुपयोग करें। त्वरित न्याय, सुनिश्चित न्याय हमारा बहुत बड़ा लक्ष्य होगा।

## कृत्रिमता के युग में मानवता की चुनौती

कृत्रिम ऊर्जा सस्ती हो, यह बहुत बड़ा षड्यंत्र है श्रम का शोषण करने का। यह पूंजीवादी मंत्र है। इस सिद्धांत को लेकर हम लोगों ने भारत की अर्थनीति पर विचार किया है। मेरा अपना व्यक्तिगत अनुभव है कि हर कम्युनिस्ट पूंजीपतियों का दलाल होता है। आमतौर पर कम्युनिस्ट कोई व्यापार नहीं करते, कोई नौकरी नहीं करते, कोई खेती और मजदूरी नहीं करते। वे तो सिर्फ एक ही काम करते हैं कि श्रमजीवियों के नाम पर पूंजीपतियों कोम ब्लैकमेल करके अपना खर्चा चलाते हैं। कम्युनिस्ट कभी भी डीजल, पेट्रोल, बिजली का मूल्य नहीं बढ़ने देते, क्योंकि यदि इनका मूल्य बढ़ जाएगा तो श्रम का मूल्य बढ़ जाएगा, आर्थिक असमानता घट जाएगी, साम्यवाद असफल हो जाएगा। इसलिए साम्यवादी तो आम तौर पर ऐसा करते ही हैं, मीडिया वाले भी पूंजीपतियों के ही साथ जुड़े रहते हैं, इसलिए वे भी कभी डीजल, पेट्रोल, बिजली के दाम नहीं बढ़ने देते। सरकार भी पूंजीपतियों के टैक्स से ही चलती है, उनकी भी यह हिम्मत नहीं है कि वे डीजल, पेट्रोल का मूल्य बढ़ा दें। लेकिन समाज में कुछ ऐसे भी नासमझ हैं जो बिना किसी स्वार्थ के भी डीजल, पेट्रोल, बिजली की मूल्य वृद्धि का विरोध करते रहते हैं। वे जानते ही नहीं हैं कि इसकी मूल्य वृद्धि का समाज पर, गरीबों पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ेगा। आप गंभीरता से विचार करें कि जो लोग डीजल, पेट्रोल, बिजली की कीमत बढ़ने का विरोध करते हैं, उनमें से कोई एक भी कभी इस बात का विरोध नहीं करता कि खाद्य तेल पर से जीएसटी हटा दिया जाए, दालों पर से टैक्स समाप्त कर दिया जाए, कपड़ा और दवा टैक्स-फ्री होना चाहिए। कभी इस बात की मांग नहीं होती, लेकिन यही लोग डीजल, पेट्रोल, बिजली के नाम पर सामने आकर खुलकर विरोध करते हैं, क्योंकि पूंजीपतियों के एजेंट चुपचाप इसी तरह समाज में भ्रम फैलाते हैं। अब समय आ गया है कि सब प्रकार के अन्य टैक्स हटाकर डीजल, पेट्रोल, बिजली पर लगाया जाए। श्रम के साथ न्याय होना चाहिए, पूंजीपतियों की दलाली करने वाले बेनकाब होने चाहिए। मेरा स्पष्ट मानना है कि जो लोग डीजल, पेट्रोल, बिजली की मूल्य वृद्धि का विरोध करते हैं, वे जाने-अनजाने पूंजीपतियों की दलाली करते हैं।

## क्या दक्षिणपंथ वास्तव में एक स्वतंत्र विचारधारा है? सहसंपादक - ज्ञानेंद्र आर्य

मैं पिछले कुछ समय से दक्षिणपंथ, वामपंथ, समाज, संगठन और परिवर्तन के संबंध पर विचार कर रहा हूँ। इस संदर्भ में कुछ प्रश्न उभरे हैं, जिन पर मित्रों के विचार जानना चाहता हूँ।

विचार हेतु प्रश्न

1. क्या समाज का स्वाभाविक चरित्र परिवर्तन का विरोध करना है, या वह केवल परिवर्तन की सामाजिक परीक्षा करता है?

2. यदि समाज स्वाभाविक रूप से परिवर्तन को धीरे-धीरे स्वीकार करता है, तो क्या इस प्रवृत्ति को दक्षिणपंथ कहा जाना चाहिए?

3. क्या दक्षिणपंथ वास्तव में एक स्वतंत्र विचारधारा है, या वह समाज की स्वाभाविक सावधानी का राजनीतिक नाम मात्र है?
4. क्या वामपंथ केवल परिवर्तन की बात करता है, या वह परिवर्तन को ऐतिहासिक आवश्यकता और नैतिक अनिवार्यता भी मानता है?
5. क्या दक्षिणपंथ की आधुनिक पहचान मुख्यतः साम्यवाद और वामपंथ के विरोध से निर्मित हुई है?
6. यदि साम्यवाद, वर्ग-संघर्ष और क्रांतिकारी परिवर्तन की विचारधारा इतिहास में न होती, तो क्या दक्षिणपंथ जैसा कोई राजनीतिक वर्गीकरण अस्तित्व में आता?
7. क्या दक्षिणपंथ और वामपंथ वास्तव में दो विचारधाराएँ हैं, या समाज और संगठन के बीच संबंध की दो अलग-अलग रणनीतियाँ?
8. क्या सत्ता में आने के बाद वामपंथ और दक्षिणपंथ दोनों ही संगठन-प्रधान हो जाते हैं?
9. क्या पूंजीवाद को दक्षिणपंथ का स्वाभाविक अंग माना जाना चाहिए, जबकि पूंजीवाद स्वयं भी समाज में तीव्र परिवर्तन लाता है?
10. क्या वास्तविक संघर्ष वामपंथ बनाम दक्षिणपंथ का है, या समाज तत्व बनाम संगठन तत्व का?

अंतिम प्रश्न

क्या दक्षिणपंथ एक वास्तविक, स्वतंत्र और सकारात्मक विचारधारा है, या वह मुख्यतः वामपंथ द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन के प्रति समाज की स्वाभाविक प्रतिक्रिया का नाम है?

अपने विचार तर्क सहित रखें। उद्देश्य किसी विचारधारा का समर्थन या विरोध नहीं, बल्कि उसकी प्रकृति को समझना है।

## ज़ूम "चर्चा कार्यक्रम" से :-

**1 सामाजिक हिंसा और सरकारी हिंसा**

21/05/2026 की ज़ूम चर्चा के अंतर्गत सामाजिक हिंसा और सरकारी हिंसा विषय पर चर्चा हुई। चर्चा में यह विचार रखा गया कि समझदारी तब महत्वपूर्ण हो जाती है जब समाज में धूर्तता और चालाकी प्रधान हो। यदि समाज आचरणशील हो, जैसे राम राज्य के दौरान माना जाता है, तो वहाँ शराफत और सीधापन पर्याप्त होता है, लेकिन आज के छल-कपट भरे माहौल में जीवित रहने के लिए समझदार होना अनिवार्य है। चर्चा में शरीफ, चालाक और समझदार व्यक्ति के बीच अंतर स्पष्ट किया गया। शरीफ व्यक्ति केवल कर्तव्य करता है और अक्सर ठगा जाता है, जबकि चालाक व्यक्ति केवल अधिकारों की बात करता है और दूसरों को ठगता है। समझदार वह है जो कर्तव्य और अधिकार दोनों का संतुलन रखता है। वह न तो स्वयं ठगा जाता है और न ही किसी को ठगता है। यह भी कहा गया कि समझदारी का अर्थ बुद्धि और भावना का पर्याप्त संतुलन है। यदि केवल बुद्धि की प्रधानता हो और भावना न हो, तो व्यक्ति धूर्तता की ओर बढ़ जाता है। यदि केवल भावना अधिक हो, तो वह शराफत को जन्म देती है, जो कई बार मूर्खता बन जाती है। वर्तमान दौर में बुद्धि के साथ-साथ थोड़ा भावुक होना भी आवश्यक है ताकि बुद्धि सही रास्ते पर बनी रहे। तर्क और श्रद्धा की भूमिका पर चर्चा करते हुए कहा गया कि श्रद्धा किसी के प्रति गहरा विश्वास और पवित्र भावना है, जो अच्छी बात है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब श्रद्धा अंधश्रद्धा में बदल जाती है और व्यक्ति तर्क करना छोड़ देता है। तर्क किसी भी विषय को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसने का उपकरण है। एक समझदार व्यक्ति श्रद्धा और तर्क को एक साथ जोड़कर चलता है। समझदार व्यक्ति की पहचान बताते हुए कहा गया कि वह किसी भी घटना या अपमान पर तुरंत प्रतिक्रिया नहीं देता। वह अपमान करने वाले की मंशा को समझने का प्रयास करता है। यदि वह समझ जाता है कि सामने वाला अपनी हीन भावना के कारण ऐसा कर रहा है, तो वह शांत रहता है। वह नारों और भावनात्मक बहकावे में भी नहीं आता, क्योंकि वह जानता है कि धूर्त लोग अक्सर भावुक जनता को प्रभावित करने के लिए ऐसे नारों का प्रयोग करते हैं। चर्चा में विवेक को समझदारी का एक महत्वपूर्ण उपकरण बताया गया। विवेक के माध्यम से ही व्यक्ति सही-गलत, पाप-पुण्य और अच्छे-बुरे के बीच अंतर कर पाता है।

**निष्कर्ष-** रूप में यह विचार सामने रखा गया कि वर्तमान सामाजिक ढांचा शरीफों के लिए घातक है। इसलिए व्यक्ति को शराफत से निकलकर समझदारी की ओर बढ़ना चाहिए, जहाँ वह अपनी रक्षा कर सके और समाज का सही मार्गदर्शन कर सके।

**2 तर्क श्रद्धा और समझदारी**

26/05/2026 की ज़ूम चर्चा में तर्क, श्रद्धा और समझदारी के विषय के साथ-साथ सामाजिक हिंसा और सरकारी हिंसा के प्रश्न पर भी विस्तार से विचार किया गया। चर्चा का केंद्र बिंदु यह रहा कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में राज्य द्वारा की गई हिंसा और समाज में होने वाली हिंसा के बीच क्या संबंध है तथा समाज को अहिंसक बनाने में तर्क, श्रद्धा और समझदारी की क्या भूमिका हो सकती है। चर्चा में कहा गया कि सिद्धांत रूप में लोकतंत्र पूरी तरह अहिंसक होना चाहिए, जहाँ स्वतंत्रता, समानता, न्याय और चुनाव जैसी प्रक्रियाएँ प्रभावी रूप से कार्य करें। यदि

लोकतंत्र में हिंसा बढ़ती है, तो यह संकेत माना जा सकता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था अभी अपरिपक्व है या किसी प्रकार के संकट का सामना कर रही है। यह भी कहा गया कि राज्य की पहली प्राथमिकता अपने नागरिकों को न्याय और सुरक्षा प्रदान करना है। यदि कानून-व्यवस्था बनाए रखने, अपराध नियंत्रण करने अथवा आतंकवाद और नक्सलवाद जैसी चुनौतियों का सामना करने के लिए राज्य को शक्ति का प्रयोग करना पड़े, तो उसे उससे पीछे नहीं हटना चाहिए। परिस्थितियों की गंभीरता के अनुसार राज्य की शक्ति के प्रयोग का स्तर निर्धारित होता है। सामाजिक हिंसा के कारणों पर चर्चा करते हुए कहा गया कि जब जनता का न्याय व्यवस्था और सुरक्षा व्यवस्था से विश्वास उठ जाता है, तब समाज में हिंसा बढ़ने लगती है। जब अपराधियों को समय पर दंड नहीं मिलता और न्याय में अत्यधिक विलंब होता है, तब लोगों के भीतर असंतोष पैदा होता है और वे स्वयं न्याय करने का प्रयास करने लगते हैं। ऐसी स्थिति सामाजिक हिंसा को जन्म देती है। चर्चा में यह भी कहा गया कि समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, संसाधनों का असमान वितरण और विभिन्न प्रकार के अंतर्द्वंद भी हिंसा के महत्वपूर्ण कारण हैं। ये परिस्थितियाँ समाज के भीतर तनाव पैदा करती हैं, जो समय के साथ हिंसक रूप धारण कर सकता है। गांधीवादी विचारों पर विमर्श करते हुए यह प्रश्न उठाया गया कि क्या गांधीजी के विचारों के कारण समाज में हिंसा बढ़ी है। इस संबंध में विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए। कुछ वक्ताओं का मानना था कि न्यूनतम हिंसा की नीति के कारण अपराधियों का मनोबल बढ़ा और समाज में असुरक्षा की भावना उत्पन्न हुई। वहीं अन्य वक्ताओं का मत था कि गांधीजी के विचार स्वयं हिंसा का कारण नहीं हैं, बल्कि उनकी गलत व्याख्या अथवा केवल अहिंसा के एक पक्ष को प्रमुखता देने से शासन व्यवस्था कमजोर हुई है। चर्चा में समाधान के रूप में न्याय व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया। यह कहा गया कि वर्तमान न्याय व्यवस्था में मामलों के निपटारे में अत्यधिक समय लगता है, जिससे जनता का विश्वास कमजोर होता है। इस संदर्भ में व्यक्तिगत संपत्ति को समाप्त कर पारिवारिक संपत्ति बनाने तथा संपत्ति को मौलिक अधिकार घोषित करने जैसे सुझाव भी प्रस्तुत किए गए। अपराध नियंत्रण के संदर्भ में यह विचार भी रखा गया कि राज्य को अपराधियों के विरुद्ध कठोर दंड का प्रावधान करना चाहिए ताकि समाज में सुरक्षा का विश्वास स्थापित हो सके और अपराधियों में कानून का भय बना रहे। चर्चा में यह निष्कर्ष भी सामने आया कि समाज को अहिंसक बनाने के लिए केवल उपदेश पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए राज्य की शक्ति और महापुरुषों के नैतिक एवं सामाजिक मार्गदर्शन का समन्वय आवश्यक है। जहाँ एक ओर राज्य को न्याय और सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए, वहीं दूसरी ओर समाज में नैतिकता, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास भी आवश्यक है।

**निष्कर्ष-** चर्चा में यह विचार व्यक्त किया गया कि लोकतंत्र में समाज को अहिंसक होना चाहिए, लेकिन राज्य को अपनी सुरक्षा और न्याय संबंधी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिशाली होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर राज्य को कानून और व्यवस्था की रक्षा के लिए शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होना चाहिए, ताकि समाज में न्याय, सुरक्षा और स्थिरता बनी रह सके।

**3 प्राचीन शास्त्रों में मिलावट, व्याख्या और प्रमाणीकरण पर विचार-मंथन**

29/05/2026 तारीख को मां संस्थान द्वारा संचालित ज़ूम चर्चा कार्यक्रम में कार्यक्रम के समन्वयक ऋषिकेश के हमारे साथी समाजविज्ञानी बृजेश राय जी ने प्राचीन भारतीय शास्त्रों में मिलावट तथा उनके प्रमाणीकरण की प्रक्रिया पर चर्चा की। इंटरनेट के माध्यम से ज़ूम एप्लिकेशन पर चलने वाला यह कार्यक्रम पिछले छह वर्षों से निरंतर संचालित हो रहा है। वर्तमान स्वरूप में यह कार्यक्रम पिछले चार वर्षों से देशभर के अनेक मूर्धन्य विद्वानों के सहयोग से चल रहा है। यद्यपि प्रतिदिन लगभग 20 लोग इस कार्यक्रम से जुड़ते हैं, तथापि सक्रिय सहयोगियों की संख्या लगभग 100 तक पहुंच जाती है। पलामू के साथी संतोष माखड़िया जी ने कहा कि ऐतिहासिक एवं धार्मिक साहित्य, उनकी मूल पांडुलिपियों तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों की निरंतर खोज और अध्ययन की आवश्यकता है, ताकि उनके मूल विचार और संदेश हम तक यथासंभव अपने वास्तविक स्वरूप में पहुंच सकें। उनका मत था कि किसी एक पुस्तक, एक साहित्यकार या एक धार्मिक विद्वान के विचारों को पढ़कर किसी विषय की तह तक नहीं पहुंचा जा सकता। सत्य की समग्र समझ के लिए विभिन्न स्रोतों का अध्ययन आवश्यक है। लखनऊ से जुड़े हमारे साथी पवनजय त्रिपाठी जी ने भक्ति और ज्ञान की भूमिका पर चर्चा की। उन्होंने कहा कि भक्ति परंपराओं और शास्त्रों को सहेजने तथा उन्हें ज्ञानमार्गियों के समक्ष प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी समझ, जिज्ञासा और साधना-पद्धति होती है, और उसी के माध्यम से वह सत्य अथवा मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। आदरणीय बृजेश राय जी ने भारतीय दर्शनों में वर्णित विभिन्न प्रमाणों के आधारों पर विस्तार से चर्चा की। मेरा मानना है कि शास्त्रों में मिलावट अथवा अर्थ-विकृति का मूल कारण प्रायः उनके व्याख्याकारों द्वारा अपनी मान्यताओं के अनुरूप अर्थ सिद्ध करने का प्रयास होता है। यह समस्या केवल प्राचीन ग्रंथों तक सीमित नहीं है। मध्यकाल में तुलसीदास जी ने जिन प्रवृत्तियों के विरोध में रामचरितमानस की रचना की थी, आज अनेक व्याख्याओं और पुनर्व्याख्याओं के माध्यम से वही ग्रंथ कभी-कभी उन्हीं प्रवृत्तियों की पूर्ति का साधन बना दिया

जाता है जिनका उन्होंने प्रतिरोध किया था। इसी प्रकार कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित ष्दास कैपिटलष् और ष्कम्युनिस्ट मेनिफेस्टोष् भी समय के साथ विभिन्न राजनीतिक हितों की पूर्ति करने वाली व्याख्याओं के अधीन हो गए। अनेक व्याख्याकारों ने उन्हें अपने-अपने उद्देश्यों के अनुसार प्रस्तुत किया, जिसके परिणामस्वरूप मूल विचारों और उनके व्यावहारिक प्रयोगों के बीच बड़ा अंतर दिखाई देता है। मृत महापुरुषों के विचारों को आधार बनाकर, उनके कथनों के सहारे अपनी व्याख्याओं को जोड़ते हुए अपना हित सिद्ध करने वाले लोग सदैव रहेंगे। संभवतः यही साहित्य,दर्शन और वैचारिक परंपराओं के विकास का एक स्वाभाविक पक्ष भी है। इसीलिए बजरंग मुनि जी शास्त्रों को अंतिम प्रमाण के बजाय मार्गदर्शिका के रूप में ग्रहण करने की बात करते रहे हैं। उनका आग्रह रहा है कि यथार्थ परिस्थितियों के अनुरूप विवेकपूर्ण विचार-मंथन कर निष्कर्ष निकाले जाएं। स्वतंत्रता और सहजीवन के बीच संतुलन स्थापित करने हेतु परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने की कला का विकास प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन विचार-मंथन की वस्तु के रूप में होना चाहिए, न कि केवल प्रमाणीकरण के साधन के रूप में।

## जीवन पथ

**अब आगे...**

जी केवल इतना कि मैं भी दूसरे युवाओं की तरह आत्मनिर्भर बनने का सपना देखती हूँ।

तुम्हारी नजरों में आत्मनिर्भर बनने के मायने क्या हैं बेटी? खुद जीविका कमाना या खुशहाल पारिवारिक जीवन। इनमें से एक पक्ष प्राप्त करके तुम खुश हो सकती हो या तुम्हे दोनों दिशाओं में सफलता चाहिए!

जी, मुझे नहीं लगता कि आज कोई भी युवा इन दोनों स्थितियों में से किसी एक का चुनाव करेगा! किसको क्या मिलना है, यह भाग्य पर निर्भर करता है!

भाग्य जैसे अपारदर्शी कारक पर अपने भविष्य को निर्भर मानने वाले युवाओं को क्या जीवन में खुशहाली मिलनी चाहिए, इसे मैं अपने लिए एक प्रश्न मानता हूँ और सदैव इस प्रश्न का अपने आप को यह उत्तर देता आया हूँ कि भाग्य पर किसी भी प्रकार वे लोग निर्भर रहना चाहते हैं जो न तो परिस्थितियों से साम्य बैठा पाते हैं और न दायित्व निर्वहन को अपनी जिम्मेदारी मानते हैं। ....देखो बेटी दर्शन हमारे सामने परिस्थिति के महत्व को इस प्रकार स्पष्ट करता है कि सब कुछ पाने की इच्छा नितान्त स्वार्थी की हो सकती है, किसी सभ्य व्यक्ति की नहीं और सब कुछ छीनने का प्रयास भी कोई नितान्त स्वाथी का व्यक्ति कर सकता है लेकिन सामान्य व्यक्ति नहीं। सर्वत्र सब कुछ पानें का स्वभाव सभ्य व्यक्ति का नहीं हो सकता है बल्कि व्यक्ति तो अपनी योग्यता और कार्य कुशलता के आधार पर जो कुछ प्राप्त कर पाता है उससे सन्तुष्ट हो जाता है।

लेकिन समाज में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं अंकल कि कम योग्य व्यक्तियों को ज्यादा अच्छे अवसर प्राप्त हो जाते हैं और ज्यादा योग्य असफल रह जाते हैं।

हाँ समाज में ऐसे बहुत सारे लक्षण मौजूद हैं और मैं तुमसे यही कहलवाना चाहता था। समाज में ऐसे लक्षणों की उत्पत्ति का कारण भाग्य नहीं बल्कि व्यवस्था (राज्य) है। यह पथभ्रष्ट व्यवस्था और विकृत पूँजीवाद की गुलामी है। लोग, पूँजी के उत्पादन के गलत और समाज विरोधी साधनों को प्राप्त करके विकृत पूँजीवाद पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं और उसके दुष्चक्र में उतने ही उलझते चले जाते हैं। व्यक्ति कभी-भी क्षमता से ज्यादा भोजन ग्रहण नहीं कर पाता है क्योंकि इस विषय में हम प्रकृति की व्यवस्था के अधीन हैं लेकिन पूँजी की प्राप्ति की क्षुदा उसकी प्राप्ति से ज्यादा बढती जाती है। इसके लिए चाहे हमे कोई भी मर्यादा क्यों न तोडनी पडे?

तो क्या व्यक्ति दोषी है अंकल।

हाँ बेटी ऐसा हो सकने में किसी अवसर पर व्यक्ति दोषी हो सकता है लेकिन याद रखना व्यक्ति-मात्र दोषी नहीं है, क्योंकि वह तो दुष्चक्र में फंस गया है, हाँ ऐसा होने में वह व्यवस्था दोषी है जो व्यक्ति ने बनायी है लेकिन व्यक्ति पूँजी प्राप्त करने की क्षुदा को कभी समाप्त कर ही नही पाता है। तुम, हम सब विकृत व्यवस्था के कारण उत्पन्न हुए सैलाब में बहे जा रहे हैं। क्योंकि हमने इस अप्राकृतिक विचार को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया है कि पूँजी के बिना जीवन निरर्थक है। व्यक्ति की यह भूख जितनी बढ़ेगी वह विकृत पूँजीवाद का उतना ही गुलाम बनता चला जाएगा।

तो क्या इस विकार का कोई उपचार नहीं हो सकेगा अंकल?

बिल्कुल हो सकता है! व्यक्ति मात्र ऐसी व्यवस्था का निर्माण करे कि योग्यता और आवश्यकता से अधिक पूँजी प्राप्त करने वाला व्यक्ति वैसे ही विकार में फंस जाए जैसे कि हम इच्छा होने पर भी आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण नहीं कर पाते हैं और करते है तो प्रतिकूल परिस्थिति में फंस जाते हैं।

तो अब मुझे क्या करना चाहिए अंकल?

तुम यह प्रश्न अपने अंकल से कर रही हो या अपने गुरू से। पहले मुझसे यह स्पष्ट बताओ!

मैं इस गम्भीर उलझन का समाधान चाहती हूँ। इसलिए मेरा प्रश्न अपने गुरू से ही है।

तो तुम्हे अपने पिता का कहना मान लेना चाहिए। लेकिन तुम्हारे पिता को मैं यह सुझाव दूँगा कि उन्हें अपनी सन्तान के गुणों के स्तर को समझना चाहिए। यदि पिता की नजर में सन्तान योग्य है तो उसे सन्तान को उसकी योग्यता के विस्तार का अवसर अवश्य देना चाहिए।

लेकिन तुम सिमी के भविष्य का निर्णय करने का पूरा अधिकार रखते हो प्रोफेसर।

क्या यह उचित रहेगा कि मैं प्रकृति के स्वभाव के विरूद्ध कार्य करूँ खां। .....प्रोफेसर क्षण भर के लिए चुप होकर खां की तरफ देखते हुए पुनः कहते हैं- गुरू केवल मार्गदर्शक होता है मेरे भाई। उसे निर्णायक कभी नहीं बनना चाहिए। यदि वह ऐसा करेगा तो अपने शिष्य मण्डल पर नियन्त्रण का प्रयास करेगा, इससे व्यक्ति नीति भेद का शिकार हो जाता है। हमे किसी विषय-वस्तु के प्राकृतिक सिद्धान्त का अर्थ समझना चाहिए।

और अगर मैं अपने अंकल से इस विषय का समाधान चाहूँ तो! ....सिमी उनसे पुनः पूछती है।

तो मेरी भरसक कोशिश होगी कि तू अपनी योग्यता का उत्तरोत्तर विकास करती जाए। लेकिन मैं उस स्थिति में जल्द ही अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना चाहुँगा। गुरू मार्गदर्शक होता है तो अभिभावक संरक्षक। संरक्षक को सन्तान के प्रति निर्णय का अधिकार होता है।

मेरे भविष्य का आप दोनों चाहे जैसा भी फैसला करें, उसे तब्बजों देना ही मेरी जिम्मेदारी है। मैं आपकी अवहेलना नहीं कर सकती हूँ अंकल।

मैं तुझसे यही उम्मीद करता हूँ बेटी। इसकी शादी के बारे में, मैं तुम्हे यह सुझाव देता हूँ खां कि अभी जरा ठहरो। कोई ऐसी देरी भी अभी नहीं हुई है। .....और प्रोफेसर इतना कह पाते हैं कि तभी दरवाजे पर किसी के आने की दस्तक सुनाई देती है।

प्रोफेसर के कहने पर सिमी दरवाजा खोलती है-अरे विवेक! मेरे साथ आदित्य भी है ।

जानती हूँ। तुम दोनों अलग-अलग रह ही नहीं सकते हो।

पता नहीं लोग ऐसा क्यों समझते है!

लेकिन तुम लोग अन्दर भी आओगे या तमाम सुलह-सफाई दरवाजे पर ही हो जाएगी और ये दोनों वहीं से लौट जाएगें!

नहीं-नहीं। मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं है। आप दोनों अन्दर आईएगा। .....और वे दोनों प्रोफेसर व खां का अभिवादन करते हैं। जिसे स्वीकार करते हुए प्रोफेसर उनसे कहते हैं- बहुत लम्बा समय बिताकर आए हो बरखुरदार। क्या अपने गुरू को भूलने का इरादा है?

नहीं सर ऐसा नहीं है। बस हम दोनों घरेलू काम में उलझे हुए थे।

तब तो ठीक है।....प्रोफेसर उनकी बात स्वीकार करते हुए, आने का कारण पूछते हैं। विवेक उनके सामने राजनीति के विषय में अपनी अवधारणा रखकर आग्रह करता है कि वह इस विषय में डाक्ट्रेट करना चाहता है। वह लोकतन्त्रीय व्यवस्था पद्धति के अन्तर्गत समाज में व्याप्त कुव्यवस्था के उन्मूलन का स्वविचार उनके सामने प्रस्तुत करता है। ....आपसी विचार-विमर्श के दौरान समाज की आर्थिक व्यवस्था का जिक्र करते हुए खां, विवेक से कहते हैं- मैं आर्थिक असमानता को व्यवस्था का सबसे बडा दोष मानता हूँ विवेक।

जी हाँ। आर्थिक असमानता समाज की बडी व वास्तविक समस्या है। लेकिन मैं उस व्यवस्था को ही सबसे ज्यादा दोषपूर्ण मानता हूँ जो आर्थिक असमानता जैसे प्रलयंकारी दोष को सम्बल देती है। मैं रोग का इलाज रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु के पतन में खोजता हूँ, उसकी रोक थाम में नहीं। समाज में आर्थिक एवं दूसरे प्रकार की समस्याएं व्यवस्था के गलत ढाँचे का परिणाम होती हैं। मूल समाधान समस्या की उत्पत्ति के कारण के निराकरण में निहित होता है।

तो क्या तुम देश की लोकतन्त्रीय व्यवस्था को गलत स्वीकार करते हो विवेक?

नहीं। बल्कि मैं व्यवस्था कें मौजूदा ढाँचे को गलत स्वीकार करता हूँ।

लेकिन भारत की संसद को भारत की जनता निर्वाचित करती है। क्या दुनिया में कोई व्यक्ति ऐसा कह सकता है कि भारत की वैधानिक शक्ति जिन लोगों में निहित रहती है वे भारत की जनता की नुमाइंदगी नहीं करते हैं? क्या दुनिया में लोकतन्त्र का इससे दूसरा भी कोई प्रकार हो सकता है जिसे ये अफगान शरणार्थी आज तक नहीं समझ पाया है!

आप मेरे लिए अफगान शरणार्थी नहीं है सर। मैं समाज के इस मूढ दृष्टिकोण से इत्तफाक नहीं रखता हूँ।

खां, विवेक की बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं- तुम्हारी बात में आत्मीयता है। लेकिन यह उस वक्त और पवित्र हो जाएगी जब तुम मुझे, सर न कहकर अंकल सम्बोधन से पुकारोगे!

जी! ....वह खां के कहने को स्वीकार करते हुए कहता है- मेरे मार्गदर्शक ने मुझे यह बात कभी नहीं सिखायी कि मैं लोकतन्त्र को गलत व्यवस्था सिद्ध करूँ। बल्कि इन्होनें तो मुझे सर्वप्रथम विश्लेषण का पाठ पढाया है। इन्होनें कहा है- जीवन में प्रयोग होने वाले विषय को यथार्थ के अनुरूप परिष्कृत करके स्वीकार करो। चाहे उस विषय की खोज किसी ने भी की हो। इस नीतिगत सन्दर्भ को ग्रहण कर लोकतन्त्र के विषय में मैं यह कहुँगा कि इतिहास में सभ्यता के पुरोधाओं ने लोकतन्त्रीय जीवन पद्धति का विकास करके मानवता को अलंकृत किया है। लेकिन दुनिया के विभन्न हिस्सों में इसके आधुनिक संस्थापकों ने इसे ठीक ढंग से स्थापित नहीं किया है। हमे आज कदम-कदम पर तन्त्र के इस दोष की आलोचना करनी पड़ रही है कि व्यवस्था (राज्य) में जनता की भागीदारी होनी चाहिए न कि वह केवल जनता द्वारा स्थापित हो।

हाँ। आमतौर पर देखें तो तुम्हारे इस तर्क में कोई दोष नजर नहीं आता है लेकिन इसके बारे में यह प्रश्न है कि क्या व्यवस्था को चलाने की योग्यता सभी लोगो में होती है? क्या व्यवस्था को नियुक्त करने की क्षमता भी सभी लोगों में होती है? हमे इस विषय में भी विचार करना चाहिए। हां! तुम्हारा यह तथ्य भी स्वीकार करने योग्य है।

तब हम क्या विकल्प खोजेगें? क्या आधुनिक समाज में व्यवस्था का कोई दूसरा प्रारूप स्थापित किया जाए जिसे केवल योग्य लोग ही स्थापित करें। लेकिन उस स्थिति में हमे एक अति महत्वपूर्ण दृष्टिकोण पर ध्यान देना होगा कि उस व्यवस्था को चलाने वाले उन योग्य लोगों का चयन कौन करेगा?

# संस्थागत समाचार

## ज्ञान यज्ञ परिवार रामानुजगंज से कार्यकर्ताओं की टीम अयोध्या के लिए रवाना

रामानुजगंज। ज्ञान यज्ञ परिवार रामानुजगंज से कार्यकर्ताओं की एक टीम अयोध्या के लिए रवाना हुई है। मां संस्थान द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि आगामी 25-26 जुलाई 2026 को अयोध्या में पूर्वी एवं मध्य उत्तर प्रदेश के 35 जिलों को सम्मिलित करते हुए एक प्रांतीय अधिवेशन का आयोजन किया जाएगा। इस अधिवेशन में इन 35 जिलों के सभी ज्ञान केंद्रों के संचालक, उनके सहयोगी तथा देश के विभिन्न राज्यों में संचालित ज्ञान केंद्रों के प्रतिनिधि और कार्यकर्ता भाग लेंगे। अधिवेशन का उद्देश्य ज्ञान केंद्रों के विस्तार, संस्थागत समन्वय तथा कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण को नई गति प्रदान करना है। अयोध्या को केंद्र मानकर लगभग 300 किलोमीटर के दायरे में आने वाले उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में आगामी दो माह तक सघन संपर्क अभियान चलाया जाएगा। ज्ञान केन्द्र अधिवेशन शिविर कार्यालय, चूड़ामणि चौराहा, दशरथ कुंड मार्ग, अयोध्या स्थित शिविर कार्यालय को इस अभियान का संचालन केंद्र बनाया गया है। कार्यकर्ताओं का लक्ष्य उत्तर प्रदेश की प्रत्येक तहसील में कम से कम एक ज्ञान केंद्र की स्थापना करना है। यह अभियान केवल संस्थागत ढांचे को सुदृढ़ करने तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि इसका समापन प्रस्तावित प्रांतीय अधिवेशन में ज्ञान केंद्रों के संचालकों एवं कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम के साथ होगा। अधिवेशन का प्रमुख उद्देश्य नए ज्ञान केंद्रों की स्थापना, संगठनात्मक समन्वय तथा कार्यकर्ताओं का वैचारिक और क्रियात्मक प्रशिक्षण है। इस अभियान का संचालन संजय तिवारी, अनोखे लाल, संतोष मकड़िया, ज्ञानेंद्र आर्य, नरेंद्र सिंह, बहादुर सिंह तथा ज्ञान यज्ञ परिवार रामानुजगंज के अध्यक्ष मोहन गुप्ता के नेतृत्व में किया जाएगा। संस्था के पदाधिकारियों ने विश्वास व्यक्त किया है कि आगामी दो माह के भीतर मध्य एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश के निर्धारित जिलों में अभियान के लक्ष्यों को सफलतापूर्वक पूरा कर लिया जाएगा। ज्ञातव्य है कि वर्ष 2024 में नोएडा में आयोजित मां संस्थान के वैचारिक शिविर में यह निर्णय लिया गया था कि व्यवस्था परिवर्तन के तीनों आयामों पर योजनाबद्ध रूप से कार्य करने के लिए देशभर में ज्ञान केंद्रों की स्थापना की जाएगी। इन ज्ञान केंद्रों को विचार समन्वय एवं परिवर्तन के तीर्थ के रूप में विकसित करने की योजना बनाई गई है। पिछले दो वर्षों के दौरान ओडिशा, झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश सहित विभिन्न राज्यों में लगभग 200 ज्ञान केंद्र स्थापित एवं संचालित किए जा चुके हैं। इन केंद्रों के माध्यम से वैचारिक संवाद, सामाजिक समन्वय तथा रचनात्मक परिवर्तन की दिशा में निरंतर कार्य किया जा रहा है। दक्षिण भारत में इस अभियान के विस्तार और संचालन की जिम्मेदारी डॉ. एम. एच. पाटील के नेतृत्व में संचालित की जा रही है। संस्था का लक्ष्य देश के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान केंद्रों का सशक्त नेटवर्क विकसित कर विचार, संगठन और परिवर्तन की प्रक्रिया को जन-जन तक पहुंचाना है। मां संस्थान का मानना है कि सामाजिक परिवर्तन का आधार वैचारिक जागरण और सक्रिय जनभागीदारी है। इसी उद्देश्य से ज्ञान केंद्रों को स्थानीय स्तर पर संवाद, अध्ययन, प्रशिक्षण और रचनात्मक गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकसित किया जा रहा है। आगामी अयोध्या प्रांतीय अधिवेशन इस राष्ट्रीय अभियान की दिशा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध होगा।

# मां संस्थान की संविधान सभा पहल के प्रेरणास्रोत को श्रद्धांजलि

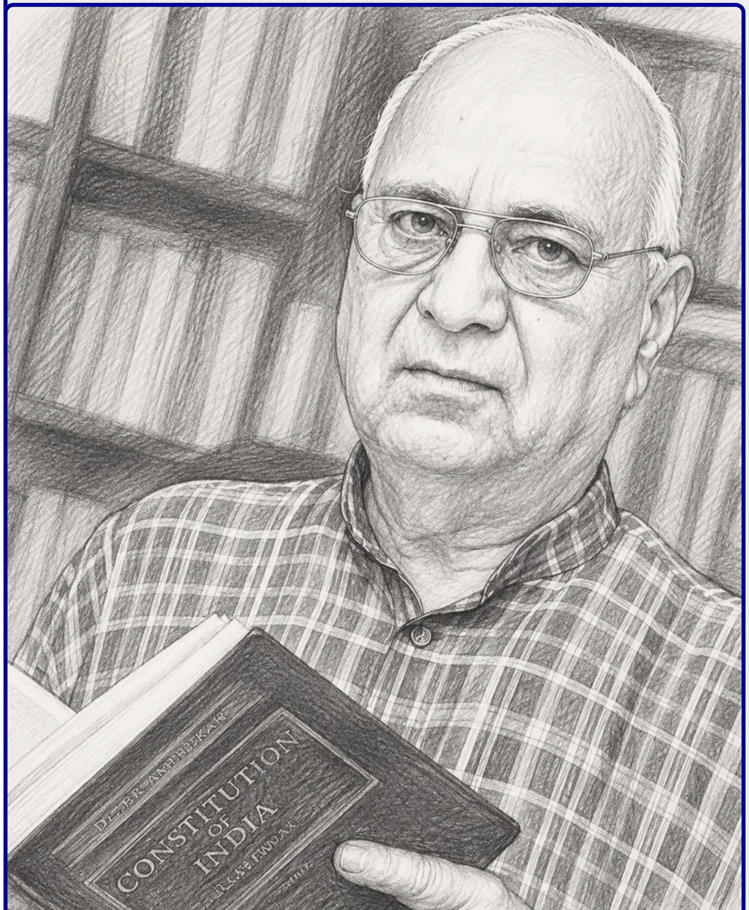


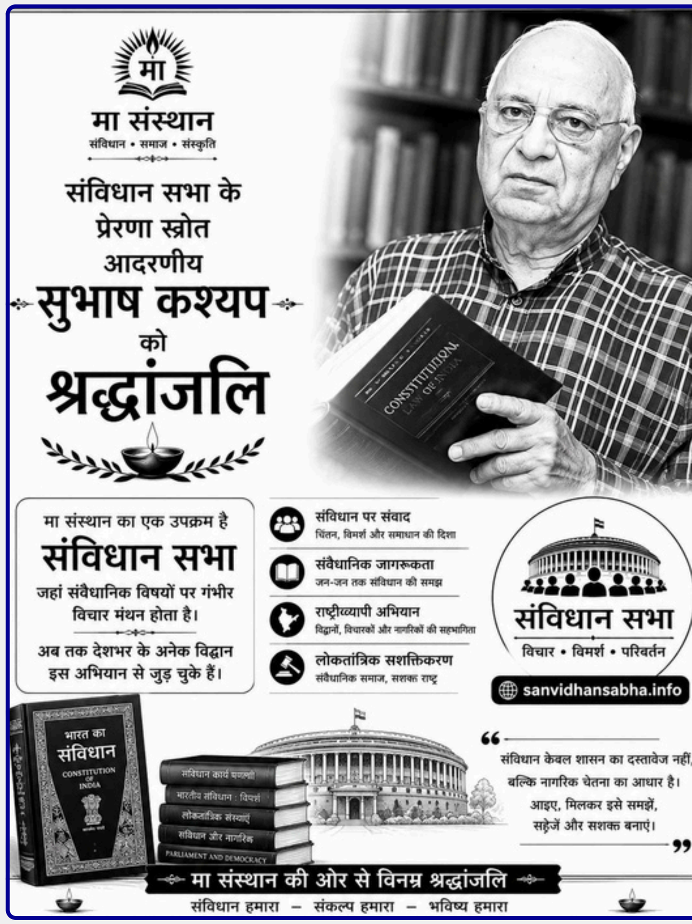


डॉ. सुभाष चन्द्र कश्यप का निधन केवल एक संवैधानिक विद्वान की विदाई नहीं है, बल्कि उस वैचारिक परंपरा की क्षति है जिसने भारत में संविधान को जनचर्चा का विषय बनाने का प्रयास किया। मा संस्थान द्वारा संचालित संविधान सभा पहल के प्रेरणास्रोतों में डॉ. कश्यप का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। रामानुजगंज के जंगलों में आयोजित संविधान मंथन और भावी भारत का संविधान पुस्तक की तैयारी से लेकर संविधान पर जनसंवाद की परंपरा को आगे बढ़ाने तक, उन्होंने सदैव यह आग्रह किया कि संविधान केवल न्यायालयों और संसद की विषयवस्तु न रहे, बल्कि समाज के सामान्य व्यक्ति तक पहुँचे। इसी दृष्टि ने आगे चलकर संविधान सभा जैसी पहलों को वैचारिक आधार प्रदान किया। मा संस्थान मानता है कि भारत में संवैधानिक जागरूकता का जो अभियान आज विभिन्न रूपों में चल रहा है, उसकी प्रेरणा उन मनीषियों से प्राप्त हुई है जिन्होंने संविधान को सत्ता का नहीं, समाज का दस्तावेज माना। डॉ. सुभाष कश्यप ऐसे ही मनीषी थे। मा संस्थान, संविधान सभा तथा ज्ञान यज्ञ परिवार की ओर से डॉ. सुभाष चन्द्र कश्यप को विनम्र श्रद्धांजलि।

**उनका जीवन संविधान की व्याख्या भर नहीं था, बल्कि संवैधानिक चेतना के सामाजिक विस्तार का सतत अभियान था।**